



रघुवंश

दिलीप महाराज की पटरानी का नाम सुदक्षिणा देवी था। उस दम्पती को समस्त सम्पदाएँ थीं, पर न थी तो एक सन्तान। इसलिए पत्नी के साथ दिलीप महाराज गुरु बशिष्ठ के पास पहुँचे और उनसे जिज्ञासा की, कि उनके भाग्य में वंश रक्षा के लिए सन्तान का योग है या नहीं ?

वशिष्ठ के पास नन्दिनी नामक एक दिव्य गाय थी। "यह गाय मामूली गाय नहीं है- कामधेनु की पुत्री है। अगर तुम दोनों पति-पत्नी मिल कर कुछ दिन तक इसकी सेवा करो, तो निश्चय ही तुम्हारी इच्छा पूरी हो जाएगी।" वशिष्ठ ने राजा को यह सलाह दी।

राजा और रानी रोज सबेरे उठते और स्नान करके, फूलों से गाय की पूजा करते। बछड़ा जब दूध पी चुकता था, तब राजा गाय को जङ्गल में ले जाकर चराया करते थे। वे आँखों की पुतली की तरह उसकी रक्षा करते और शाम होते ही उसको घर ले आते थे। यों वह भूपाल इक्कीस दिन तक गोपाल बना रहा।

बाईसवें रोज, हर रोज की तरह, राजा नन्दिनी को चराने ले गए। उस दिन गाय हिमालय पहाड़ की ओर चल पड़ी। उस पहाड़ की ऊँचाई, गहनता और सुन्दरता देखते-देखते थोड़ी देर के लिए, राजा गाय को भूल सा गया। उतने ही में वह गाय एक कन्दरा में घुस गई।

फिर वह इस तरह रम्भा उठी, जैसे किसी आफत में फँस गई हो। उस आर्तनाद को सुनते ही राजा चौंक उठा और गाय को खोजता हुआ दौड़ कर गुफा में घुस गया। वहाँ जाकर देखता क्या है कि उस गाय की पीठ पर एक सिंह सवार है और उसे खा जाने की तैयारी कर रहा है।

सन्तोष कुमार कपूर

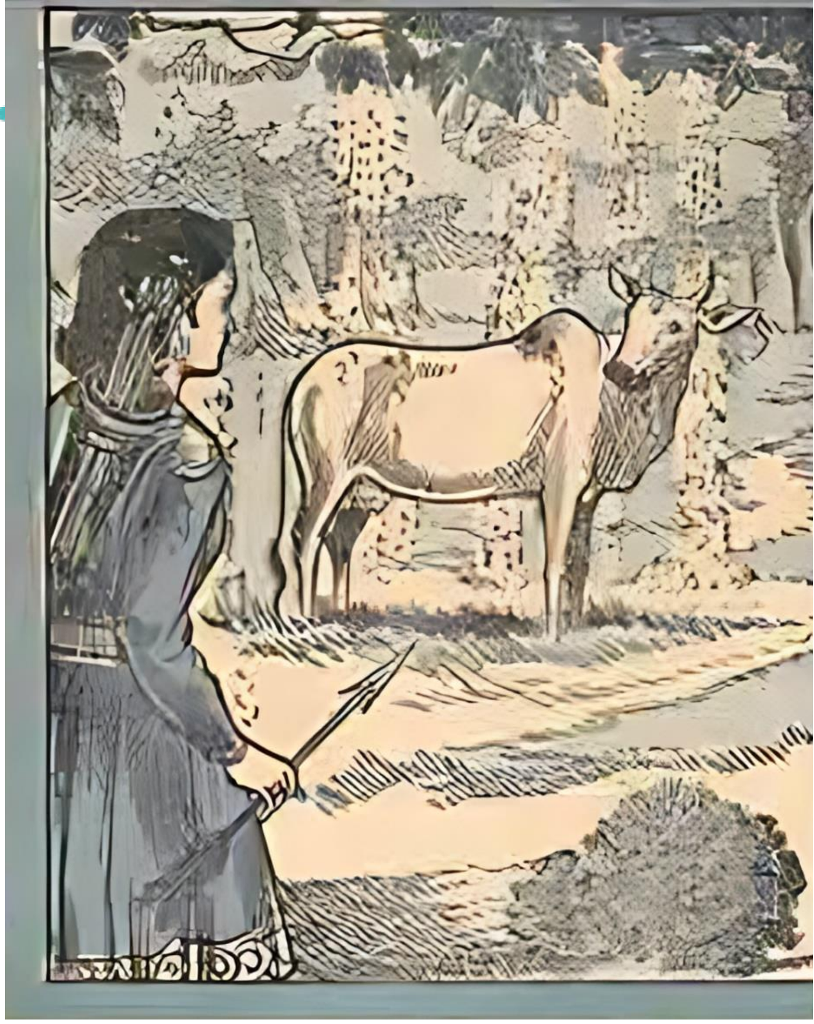


उधर, उस देवदार के पौधे को देखो। उसे पार्वती देवी ने बड़े प्रेम से लगाया था। एक दिन एक हाथी ने उस पेड़ से अपना शरीर रगड़ा, जिससे वह पेड़ तहस-नहस हो गया। यह देख कर पार्वती देवी बहुत चिन्तित हुई। इसीलिए महादेव ने उस पेड़ की रक्षा के निमित्त मुझे रख छोड़ा है। इस गाय की आयु आज खतम हो गई है, इसको खाकर मैं अपनी भूख मिटाऊँगा। इसलिए अब तुम अपनी राह पकड़ो।" सिंह ने कहा।

फौरन राजा तरकस से तीर निकालने लगा। लेकिन उसका हाथ स्तम्भित रह गया और वह बाण बाहर न निकाल सका। आश्चर्य और क्रोध में भरे राजा को खड़े देख कर वह सिंह मनुष्य की बोली में कहने लगा-"राजन ! कोई फायदा नहीं। अगर तुम मुझ पर बाण चला मी दो, तो वह मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। क्योंकि में शिवजी का परम भक्त कुम्मोदर हूँ। जब वे वृषभ-राज पर चढ़ने जाते हैं, तो पहले मेरी ही पीठ पर पैर रख कर उस पर चढ़ते हैं। उन्होंने मुझे पहरेदार का काम सौंपा है। यहाँ कोई भी जन्तु आ जाय तो उसे मार कर खाने का हक भी मुझे दे रखा है।

लेकिन इससे दिलीप महाराज जरा भी विचलित नहीं हुए। "तो शिवजी के प्रभाव से ही मेरा हाथ निश्चल हो गया था, यह बात है ? इसलिए अपने बाणों से में गाय की रक्षा नहीं कर सका। लेकिन इसके बदले खुद मैं ही तुम्हारा आहार बन जाता हूँ, इसे छोड़ दो। बेचारी इस गाय का बछड़ा दूध के लिए तड़प रहा होगा। उस मासूम पर दया करके इस गाय को छोड़ दो। मेरे गुरुदेव बशिष्ठ-मुनि को इस गाय के आभाव में बहुत तकलीफ होगी।" राजा ने कहा। यह बात सुन कर सिंह जोर से ठठा कर

हँस पड़ा-"तुम तो नादान मालूम होते हो। इस गाय के आभाव में अगर तुम्हारे गुरु को तकलीफ होगी, तो क्या तुम में ऐसी करोड़ों गाएँ देने की क्षमता नहीं है ? वैसी एक गाय के लिए भू-मण्डल के सार्वभौम सम्राट हो कर तुम अपना प्राण देना चाहते हो ? तुम्हारे जाने से एक गाय ही तो बचेगी, लेकिन अगर तुम बचे रहे तो करोड़ों प्राणियों के प्यारे पिता बन कर उनकी रक्षा करते रहोगे। क्या यह मोटी-सी बात तुम्हारी समझ में नहीं आती ?" सिंह ने कहा।



यह बात सुन कर नन्दिनी करुणा भरी दृष्टि से राजा की ओर देखने लगी। यह देख कर राजा सिंह से कहने लगा-"तुमने मेरी प्रशंसा की है कि में भू-मण्डल का सम्राट हूँ। अब अगर आफत में पड़ी एक गाय की भी रक्षा नहीं कर सकता, तो मैं सम्राट किस बात का? तुम इस देवदार पेड़ की जिस प्रकार रक्षा कर रहे हो, मैं भी इस गाय की रक्षा उसी प्रकार करता हूँ। क्या इसको असाहाय छोड़ कर चला जाना मेरे लिए धर्म कहा जाएगा?

फिर तुमने कहा कि इस गाय के लिए मैं अपने प्राण क्यों दूँ? तो यह गाय कोई मामूली गाय तो नहीं। यह तो कामधेनु की कन्या है। इसलिए मेरे इस नाशवान शरीर का बलिदान ले कर तुम मेरी अमर कीर्ति की रक्षा करो। मेरे शरीर की चिन्ता क्यों ? तुम्हारी भूख इससे मिट जाएगी। इससे बढ़ कर इसका और उपयोग क्या है? मेरी बात मान लो।" दिलीप अनेक तरह से अनुनय-विनय करने लग गया।

"अच्छा, तो वही सही।" कहता हुआ सिंह नन्दिनी की पीठ पर से कूद पड़ा। उसके कूदते ही राजा का हाथ अपने वश में आ गया और वह सिंह के मुँह में पड़ने

के लिए तैयार होकर बैठ गया और भगवान का ध्यान करने लगा।

सिंह उस पर कूदेगा, इसकी प्रतीक्षा में बैठे हुए राजा पर अकस्मात फूलों की वर्षा होने लगी। भयङ्कर सिंह उसके ऊपर तो कूदा नहीं। उसके बदले शीतल स्नेहमयी वाणी उसके कानों में पड़ी-"राजा, उठो।" राजा ने आँखे खोल कर देखा तो वहाँ सिंह नहीं था।

राजा ने विस्मय से मुड़ कर देखा तो नन्दिनी खड़ी थी। वह कहने लगी-"और कौन ? मैने ही तुम्हारी जाँच करने के लिए यह नाटक किया था। सिंह नहीं, देवदार का पेड़ भी नहीं, यह सब मेरी कल्पित रचना थे। कोई मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता, मैंने तुम्हारी धर्मप्रियता की परीक्षा ली थी। अब जो वर चाहते हो, माँग लो।" नन्दिनी ने राजा से कहा।

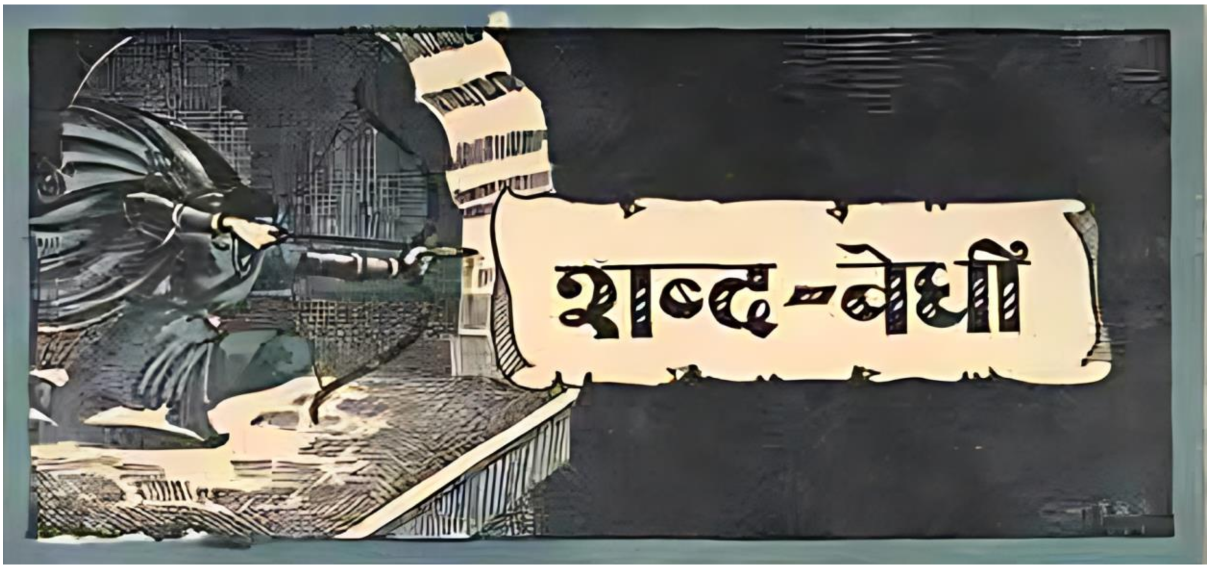
राजा ने विनम्रता से कहा-"माँ, जिस से वंश की रक्षा हो, ऐसा एक पुत्र दो।"

यह सुन कर गाय ने उसे थन से एक अञ्जुली दूध दुह कर पी लेने को कहा। लेकिन राजा ने कहा-"पहले चल कर बछड़े को दूध पिलाओ। फिर जो दूध बचेगा, वह मैं वशिष्ठ महाराज के आगे रख दूँगा। फिर जो वह कृपा कर देंगे, सिर आँखों पर लूँगा।"

यह बात सुन कर नन्दिनी बहुत खुश हुई और आश्रम को लौट आई। गाय का दूध पीकर राजा पत्नी के साथ अयोध्या को लौट गया। कुछ दिनों के बाद उसके एक पुत्र पैदा हुआ।

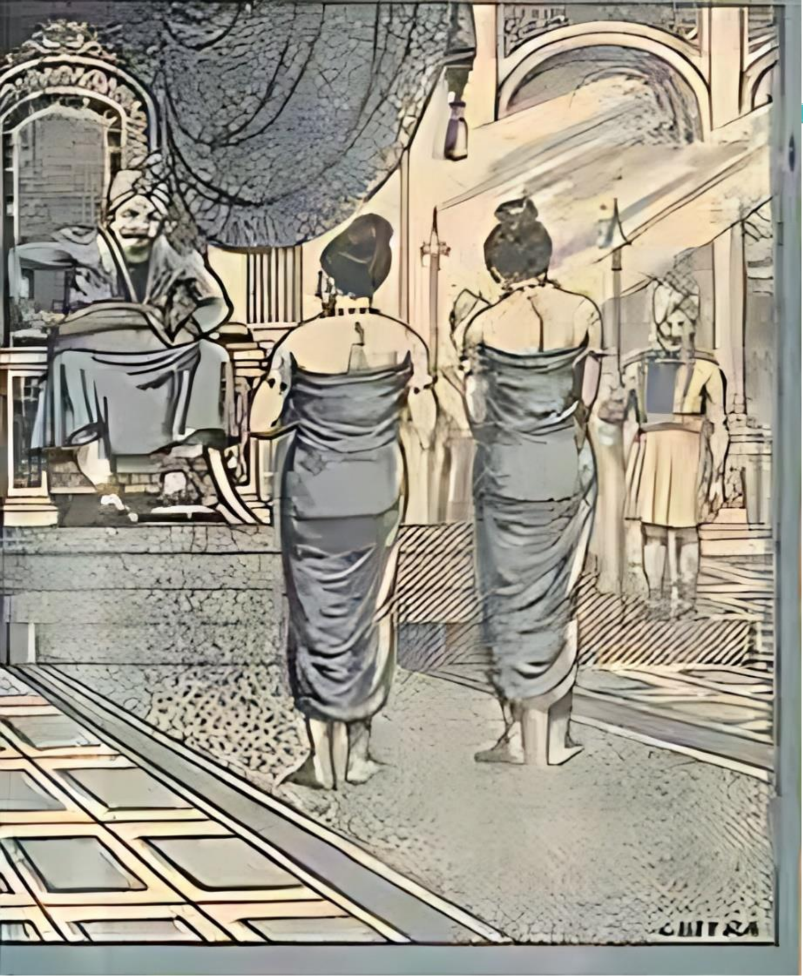
इसी बच्चे का नाम 'रघु' हुआ। राज-सिंहासन पर बैठने के बाद 'रघु' बड़ा प्रसिद्ध राजा हो गया। महामहिम राजा होने के कारण ही उसके नाम से उसका वंश प्रसिद्ध हो गया-'रघुवंश'।





पहले से देवलपुर का जमींदार कौसलपुर का पक्षपाती था। "जब जैसे बहे बयार पीठ तब तैसी की जै!" नीति वाले भीमसिंह को देख कर वह जलता आ रहा था। बीसलपुर के राज्य के पक्षवाले बलवान थे। उनको अगरहराना है, तो जो जितनी मदद कर सके, उस से लाभ उठा लेना चाहिए; इस दृष्टि से कौसलपुर वाले भीमसिंह का उपयोग कर रहे थे। देवलपुर के जमींदार को मालूम था, कि भीमसिंह ऐन मौके पर दगा दे सकता है। उसने सोचा कि मौका मिल गया है, अब उसके प्रबल विरोधी विजयसिंह के दल के द्वारा उसका (भीमसिंह का) रहस्य जाना जा सकता है। यह मौका पाकर देवलपुर का जमीदार मन-ही-मन खूब खुश हुआ।

एक मन्दिर में अपराधियों के इन्साफ करने का निश्चय हुआ और देवलपुर के ज़मींदार ने



वहाँ आकर आसन जमाया। उसके सैनिकों ने विजयसिंह और नाथूसिंह को उसके सामने हाजिर किया। दोनों कैदियों ने देव-मन्दिर को देख कर मन में कहा-"उस भगवान के सिवा अब कौन हमारी रक्षा कर सकता है?" विजयसिंह चिन्तित हो उठा। रण-भूमि में वीरता पूर्वक मरता, तो सीधे स्वर्ग जाता। उसके बदले यह बेसिर-पैर की मौत हमारे सामने आ खड़ी हुई। देवलपुर के जमींदार ने नाथूसिंह और विजयसिंह की ओर गम्भीर भाव से देख कर पूछा-"सच कहो, तुम लोग किस पक्ष के हो?"

इतना गम्भीर प्रश्न सामने आ खड़ा होगा, नाथूसिंह और विजयसिंह के ख्याल में भी नहीं आया था। भीमसिंह ने कहा था कि ये बीसलपुर वाले हैं, और देवलपुर के जमींदार ने इस पर विश्वास किया होगा--यह सोच कर वे दोनों इस प्रश्न में आशा और आश्चर्य में पड़ गए। लेकिन सच बोलने के सिवा दूसरा कोई उपाय तो था नहीं। झूठ बोल कर विश्वास दिलाने का अब तिल मात्र भी अवकाश नहीं रह गया था। कौसलपुर के पक्ष वाले माने जाकर तो वे कैदी बनाए गए थे; तो क्या अब बीसलपुर के पक्ष वाले हो जाएँगे ? देवलपुर के जमींदार के सवाल के जवाब में विजयवर्मा यों कहने लगा-""मैं तो बीसलपुर के पक्ष वालों में ही हूँ; मालूम नहीं --यह किस पक्ष का आदमी है। एक दिन किसी बात के सिलसिले में मेरी इसकी दोस्तो हो गई और तब से यह मेरे साथ रहने लगा। इसका नाम है नाथूसिंह और काम है नाव खेना।"

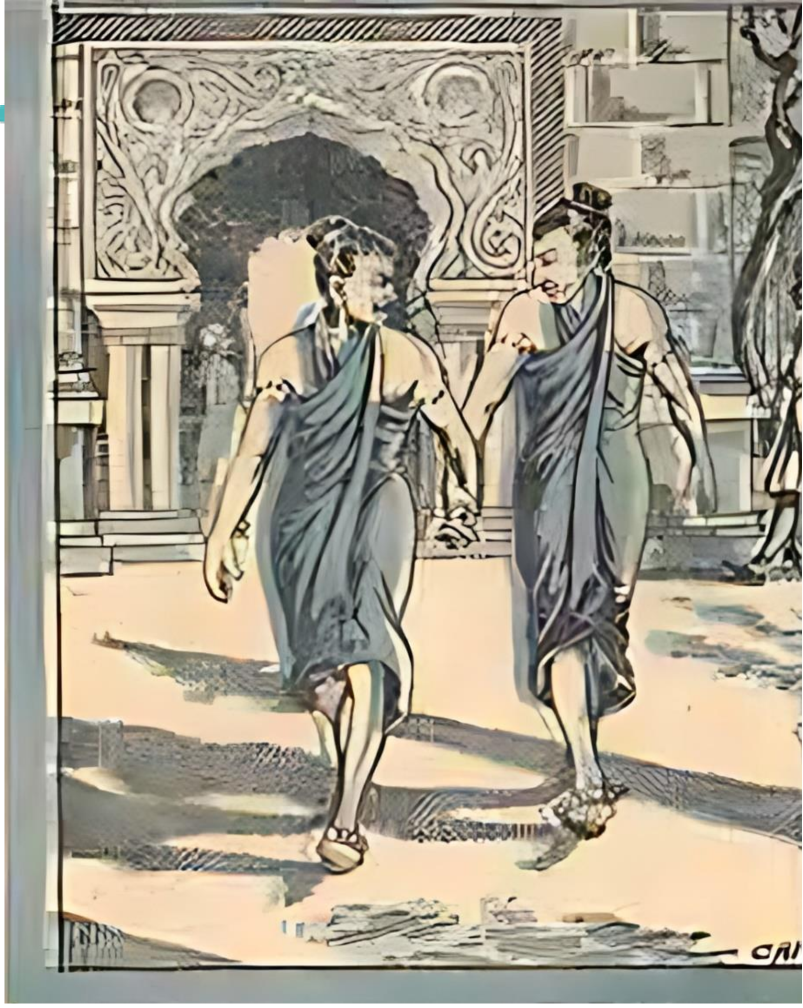
छल-कपट से शून्य विजयवर्मा का यह जवाब सुन कर देवलपुर का जमींदार खुश होता सा मालूम हुआ। उसके मुँह पर मन्द मुस्कुराहट फैल गई।

"तुम अभयसिंह के सुयोग्य पुत्र हो विजयसिंह।" देवलपुर के जमीदार ने कहा-"तुम्हारे बाप को मैं जानता हूँ। समय और परिस्थिति के अनुसार अगर हम न चलें, तो उस से कितना प्रमाद होता है; इमका साक्षी तुम्हारे पिता का जीवन ही है। सारा देश यह जानता है कि तुम्हारे पिता किस प्रकार क्रूर हिंसा के शिकार हो गए। मैं कौसलपुर बाला हूँ; फिर भी क्षमा करके तुम्हें रिहा करता हूँ।"

"फिर इस नाथूसिंह का क्या होगा ?" विजयसिंह ने देवलपुर जमीदार का उद्देश्य समझ कर पूछा।

"इसको अभी छोड़ा नहीं जा सकता। इसके बारे में बहुत दिनों से सुनता आया हूँ। इस प्रान्त में इतना मशहूर कपट-कला जानने वाला और कोई नहीं। इसके गले में फाँसी की रस्सी पड़े, तो इसे कुछ तकलीफ तो जरूर होगी, मगर उसका अन्तिम परिणाम, इसके लिए और दूसरों के लिए, हितकर ही होगा।" जमींदार ने कहा।

जमींदार की बात सुनते ही नाथूसिंह को ऐसा मालूम हुआ कि सचमुच रस्सी आकर उसके गले में पड़ी और उसका गला कसा जाने लगा।



बड़ी दीनता से उसने विजयसिंह की ओर देखा। विजयसिंह ने एक दृढ़ निश्चय के भाव से देवलपुर के जमींदार की ओर देख कर कहा-"आप ने मुझे अपनी दया का पात्र समझा, यह मेरे लिए गर्व करने की बात है। सच पूछा जाय तो मुझे कौसलपुर और बीसलपुर के राज्य-वंशों के कलह-कोलाहल से जरा भी प्रेम नहीं। भीमसिंह और सोमशर्मा ने मेरे पिता और मेरे ऊपर जो अत्याचार किया, उस अन्याय का बदला लेना ही मेरा एक मात्र सङ्कल्प है। इसलिए अगर आप मुझे क्षमा करना चाहते हैं तो मेरी आप से प्रार्थना है



कि मेरे इस मित्र नाथूसिंह को भी क्षमा करने की उदारता दिखाइए।"

विजयसिंह का यह गम्भीर स्वर सुन कर देवलपुर के जमींदार का मुख मण्डल कुछ क्षण के लिए द्विधाकुल हो उठा। एक बार दीर्घ साँस छोड़ कर उसने कहा-"बहुत अच्छा! मैं दोनों को क्षमा करके छोड़ देता हूँ। लेकिन अब से तुम मेरी नजरों में या मेरे सैनिकों की नजरों में कभी न पड़ना।" विजयसिंह और नाथूसिंह जमींदार को प्रणाम करके अपनी इच्छा से बाहर आ गए। अब उस प्रान्त से जितनी जल्दी हो सके अपने-अपने स्थानों में पहुँच जाना चाहिए, इस बात की आवश्यकता उन्हें तीव्रता से महसूस होने लगी। इस पर भीमसिंह के सैनिकों से बच कर जाना अत्यन्त आवश्यक है।

इसलिए दोनों टेढ़ी-मेढ़ी पगडण्डियों से चल कर जङ्गल में पहुँचे ही थे कि सूर्यास्त का समय हो गया। विजयसिंह और नाथूसिंह दोनों भूख के मारे व्याकुल हो रहे थे। पहले भोजन, पीछे आराम- यह आवश्यक काम भी उन्हें नहीं सूझता था।

“मैं अपने गुप्त-गृह में जा रहा हूँ। तुम क्या किसी धर्मशाला में ठहरोगे ?नाथूसिंह ने पूछा। "वही सोच रहा हूँ। हमने जिस काम का सङ्कल्प किया था, वह पूरा तो नहीं हुआ है। फिर भी कुछ-न-कुछ उसका फल तो मिल ही गया है। करुणा की रक्षा करके उसको साथ ला न सका, लेकिन जबर्दस्ती के उस व्याह से उसको बचा तो लिया। अब आगे की बात कल सोची जाएगी। मै धर्मशाला में ठहरूँगा।" विजयसिंह ने कहा।

नाथूसिंह अपने जङ्गल वाले गुप्त-गृह की ओर बढ़ा। विजयसिंह सीधे धर्मशाला की और चला। लेकिन धर्मशाला पहुँचने के पहले

ही, इसको खोजते आते हुए दो अनुचर उसे दिखाई पड़े। कोई-न-कोई आफत आ गई है, इस आशङ्का से विजयसिंह तेज कदम से चल कर उनके सामने जा खड़ा हुआ।

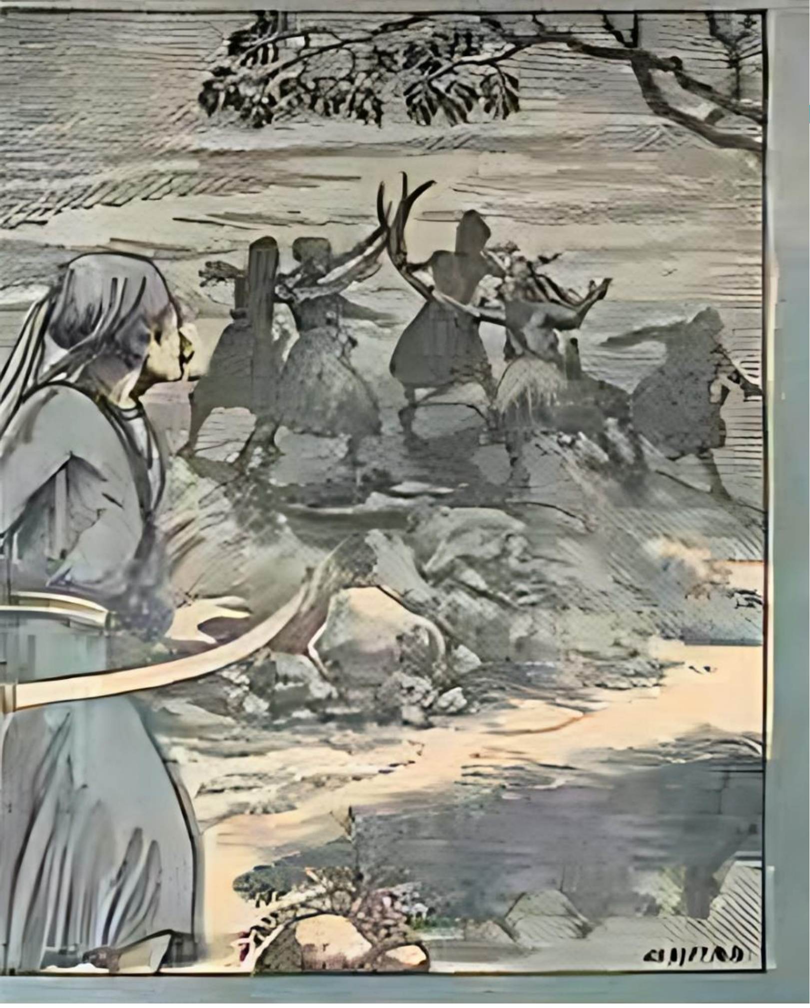
उन दोनों का मुख अत्यन्त उत्साह से भरा हुआ था। यह देख कर विजयसिंह को ऐसा मालूम हुआ कि ये लोग कुछ न कुछ खुशखबरी सुनाएँगे। "क्या खबर लाए हो ?" विजयसिंह ने आतुरता से पूछा।

"बहुत सी बातें हैं। धर्मशाला में चल कर सब कुछ बताएँगे। पहले यह चिट्ठी तो देखिए।" कहते हुए एक अनुचर ने विजयसिंह के हाथों में एक चिट्ठी रख दी। विजयसिंह ने वह चिट्ठी एक दो बार पढ़ी। चन्द्रदुर्ग का स्वामी बीसलपुर के राजा की बुलाहट पाते ही, अपने आदमियों को साथ लेकर चला गया। वहाँ से बीस मील की दूरी पर कौसलपुर और बीसलपुर के सैनिकों में भारी मुठभेड़ होने जा रही थी। उस समय वह बुलावा उसके पास आया था। उस पत्र में लिखा था कि विजयसिंह को अनुचरों के साथ बड़ी हिफाजत से युद्ध में उतरने को तैयार रहना चाहिए क्योंकि जाने किस घड़ी युद्ध छिड़ जाय।"



वह चिट्ठी पढ़ कर विजयसिंह को अपार आनन्द हुआ। कितने दिनों के बाद कौसलपुर राज्य प्रान्त में रण-रङ्ग होने जा रहा है; यह देख कर यह फूला न समाया। इसी चढ़ाई में यह मालूम हो जाएगा कि भीमसिंह की ताकत कितनी है ! विजयसिंह ने सोचा कि जिस नर्मदा तीर के भवन को भीमसिंह ने बरात के लिए सजाया था, वही भवन उसका विनाश-भवन भी होगा।

अनुचरों के साथ वह धर्मशाला पहुँचा। वहाँ कोलाहल मचा हुआ था। तरह-तरह की बातें हो रही थीं। कोई कह रहा था-



"सैकड़ों हजारों की संख्या में किसी की सेना जङ्गल की राह से आ रही है।"

"उस जङ्गल में पेड़ों की अपेक्षा सैनिकों की संख्या ही सर्वाधिक दीख पड़ती है, यह तो मैं अपनी आँखों से देख कर आया हूँ।" किसी ने अत्यन्त गम्भीर भाव से कहा। अनुचरों की ये बातें सुनते हुए विजयसिंह ने भोजन समाप्त किया। तब तक रात काफी हो आई थी। कुछ अनुचरों को सो जाने के लिए और कुछ को अपने इर्द-गिर्द पहरा देने के लिए तैनात करके वह खुद सो गया। पूरब में पौ फटते ही विजमसिंह की नींद खुल गई। होशियारी से पैर रखते विजयसिंह उन पेड़ों के नीचे से चलने लगा। इस तरह जब वह चला जा रहा था कि हठात उस के कानों में एक भारी आवाज सुनाई पड़ी। फौरन म्यान से तलवार निकाल कर वह उस आवाज के पीछे दौड़ पड़ा। घने पेड़ों को पार कर विजयसिंह जब एक पत्थरीले मैदान में पहुँचा तो यह स्तम्भित रह गया।

किसी एक आदमी को चार-पाँच सैनिकों ने घेर लिया था और वे लोग उसका सिर काटने का प्रयत्न कर रहे थे। वह घिरा हुआ आदमी, सैनिकों के आक्रमण से अपने को बचाता हुआ, मौका मिलते ही उनके ऊपर वार भी करता जा रहा था।

"आया ! डरो मत। साहस के साथ डटे रहो।" इस प्रकार कहता हुआ विजयसिंह उन सैनिकों की ओर दौड़ा। उसे मालूम नहीं था कि वे लोग कौन हैं। लेकिन एक आदमी को पाँच-सात सैनिक मिल कर घेर लें और मार डालने का प्रयत्न करें; विजयसिंह को यह बहुत बड़ा पाप मालूम हुआ।

विजयसिंह का बढ़ावा सुन कर वह निःसहाय आदमी बड़े साहस के साथ अपने शत्रुओं के आक्रमण का जवाब अपनी तलवार

की तेज धार से देने लगा। उसका उत्साह सौ गुना हो गया था और वह एक के बाद एक सैनिक को घायल करता गया। इतने में विजयसिंह वहाँ आ पहुँचा और सैनिकों पर टूट पड़ा।

विजयसिंह के आने के पहले ही उस वीर के बार से एक सिपाही कट कर गिर पड़ा, दूसरा घायल होकर कराहने लग गया था। विजयसिंह के आते ही सैनिकों में हलचल मच गई और वे सिर पर पैर रख कर नौ-दो ग्यारह हो गए।

यों भागते हुए सैनिकों में एक को विजयसिंह ने मार गिराया। उसके बाद फिर एक दूसरे को पहचाने हुए सा सामने जा कर खड़ा हो गया।

"ऐन मौके पर मदद पहुँचाने वाले कौन हो तुम ?" उस वीर पुरुष ने विजयसिंह से पूछा। विजयसिंह ने उस वीर पुरुष के गम्भीर कण्ठ स्वर से समझ लिया कि यह कोई मामूली सैनिक नहीं; जरूर कोई प्रसिद्ध पुरुष है।

"मेरे आने में कुछ देर हो गई। मुझे अफसोस है कि मेरी सहायता आप के किसी काम की नहीं हुई; में न भी



आता, तब मी आप सैनिकों का काम तमाम कर ही चुके थे।" विजयसिंह ने कहा। विजयसिंह की बातों का जवाब वह वीर पुरुष देने ही जा रहा था, कि कुछ घुड़सवारों के आने की आहट उसके कानों में पड़ी। थोड़ी देर के बाद चार-पाँच सौ घुड़सवार वहाँ आकर खड़े हो गए। उनका दल-नायक सब से पहले घोड़े पर से उतर पड़ा और उस बीर पुरुष के सामने आकर अभिवादन करके बोला-"हुजूर के हुक्म से मैं अपने दल-बल के साथ हाजिर हुआ हूँ। चन्द्र-दुर्ग के स्वामी एक हजार सिपाहियों को लेकर

आज शाम को आ जाएँगे। अब आप की क्या आज्ञा है ?"

देखो, उन पेड़ों के पीछे हमारा डेरा है। आगे क्या करना है; अभी निश्चय करेंगे। घुड़सवारों को यहीं ठहरने को कह दो और तुम इनके साथ डेरे पर आ जाओ।" ऐसा कह कर वह वीर पुरुष चला गया।

विजयसिंह यह सब देख-सुन कर अत्यन्त विस्मय में पड़ गया। कुछ देर के बाद घुड़सवारों का नायक अपना काम करके विजयसिंह के पास आ पहुँचा। अत्यन्त कुतुहल से विजयसिंह ने उस दल-नायक से पूछा कि वह वीर पुरुष कौन हैं ?

"वे कौन है नहीं जानते हो? वे बीसलपुर के स्वामी हैं।" दल-नायक ने जवाब दिया। विजयसिंह के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। एकाएक अनायास वह बीसलपुर के स्वामी की मदद को पहुँच गया। यह देखकर उसने अपने आप को बधाई दी।

भीमसिंह और सोमशर्मा का अन्त काल निकट आ गया है--यह सोच कर वह अत्यन्त उत्साहित हुआ और दल-नायक के साथ बीसलपुर के स्वामी के डेरे की ओर चल पड़ा।

विजयसिंह को आया हुआ देख कर बीसलपुर के स्वामी ने अत्यन्त सम्मान के साथ उसका स्वागत किया। स्वागत सत्कार के बाद बातचीत शुरू हुई।

"मैं कौन हूँ, यह बात तुम को मालम हो चुकी होगी। अब तुम अपना परिचय मुझे दो।" बीसलपुर के स्वामी ने कहा।

"मेरा नाम विजयसिंह है।" इसके सिवा वह और क्या कहे, सूझ नहीं पड़ा। न तो अब तक किसी बड़े युद्ध में भाग लिया, न कोई बड़े साहस का काम किया था; फिर वह अपना परिचय क्या देता ?

(अगले अङ्क में समाप्त)





'ओंटिमिट्टा' की उत्पत्ति

एक बार कड़पा मण्डल (आन्ध्र) में दो डाकू बहुत प्रसिद्ध हो गए हैं। वे लोग सड़क के किनारे घात में बैठे रहते थे और राहगीरों को मार कर उनकी धन सम्पत्ति लूट लिया करते थे। यों उन्होंने काफी धन जमा कर लिया था। इस प्रकार लूट कर लाया हुआ धन, वे एक पहाड़ के ऊपर गाड़ते जाते थे। उस पहाड़ के ऊपर स्लेट की तरह एक बहुत बड़ी चट्टान थी। उसी चट्टान के पास एक तहखाना बना कर अपनी समस्त कमाई वे दोनों उसी में रखते आ रहे थे।

एक दिन हर रोज की तरह एक बटोही उस रास्ते जा रहा था। अपनी आदत के मुताबिक दोनों डाकू उसके सामने पहुँचे और लाठी उठा कर खड़े हो गए। फिर गरज कर बोले-"अरे ! इधर-उधर क्या देखते हो ? सीधी तरह जो कुछ है; निकाल डालो।"

भोली-भाली दृष्टि से देखता हुआ वह मुसाफिर निश्चित खड़ा हो गया और मुस्कुराने लगा। कुछ देर के बाद उसने उनसे प्रश्न किया-"भाइयो! तुम लोग इस प्रकार मेहनत करके जो धन जमा करते हो, उससे मुझे प्रसन्नता होती है। क्योंकि हमारे बड़े बूढ़ों ने कहा है, 'जिसके पास धन नहीं होता, वह निकम्मा आदमी है।' इसलिए जब हमने मनुष्य जन्म धारण किया है, तो धन जमा करना भी जरूरी हो जाता है। लेकिन मेरी एक छोटी-सी शङ्का है कि तुम लोग यह सब धन ले जाकर किसको सन्तुष्ट करोगे, यह मैं नहीं जानता। जो लोग तुम्हारे इस जमा किए हुए धन से सुख-भोग करते हैं, क्या वे तुम्हारे किए हुए पापों को भी बाँट लेंगे ? यह बात अगर जान लो, तो फिर तुम जितना भी सिर फोड़ सको, फोड़ते जाओ; कोई चिन्ता नहीं।"

भास्कर रेड्डी

दोनों डाकू चिन्ता में पड़ गए।

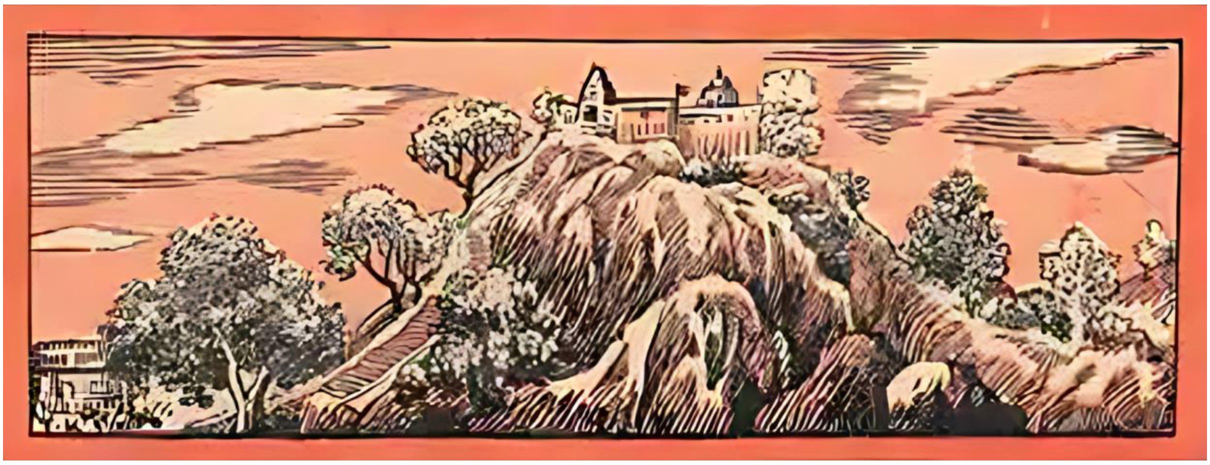
यह देख कर उस पथिक ने उन्हें वाल्मीकि की जीवन कथा कह सुनाई। वह कहानी सुनते ही उनके हाथ की लाठी जाने कहाँ गिर पड़ी और वे दोनों कटे-पेड़ की तरह घड़ाम से उसके पैरों पर गिर पड़े !

उस राहगीर ने उन दोनों को उठा कर खड़ा किया और ढाढ़स बँधाया, इस पर वे दोनों डाकू चोले- "महात्मा! हम लोग भारी दुष्ट हैं। आज तक हमने कितने मोले-भाले पथिकों को कितनी क्रूरता से मारा-पीटा है, यह हमी को याद नहीं। नहीं जानते इस तरह हमने लाखों की सम्पत्ति क्यों जमा की है। वहाँ देखिए उस पहाड़ के ऊपर काली चट्टान के पास सब कुछ गाड़ कर रख छोड़ा है। यह समस्त धन आप का है, आप उसको ले जाकर जो चाहे करें। अब हम आप के दासानुदास हैं, आप जो कहेंगे वही करेंगे। इस पाप-सागर से हमें पार उतार दीजिए।"

तब उस पथिक ने डाकुओं का समस्त धन अपने अधिकार में कर लिया और उसी पहाड़ के ऊपर एक बहुत बड़ा मन्दिर बनवा दिया। पास ही एक निर्मल जड़ वाली सरसी खुदवा दी और मन्दिर में श्री रामचन्द्र जी की मूर्ति स्थापित कर दी।

उन डाकुओं के नाम को शाश्वत बनाने के लिए उस महात्मा ने उसके पास के गाँव का नाम ही 'ओटि मिट्टा' रख दिया।

डाकुओं के नाम पर बसा हुआ वह गाँव कड़पा जिले का एक मात्र पुण्य क्षेत्र माना जाता है; जहाँ राम भक्तों का आश्रय है। इसी 'ओटी मिट्टा' गाँव में आन्ध्र भागवत के रवियता 'बम्मर पोतनामात्य' अवतरित हुए थे, ऐसा माना जाता है।





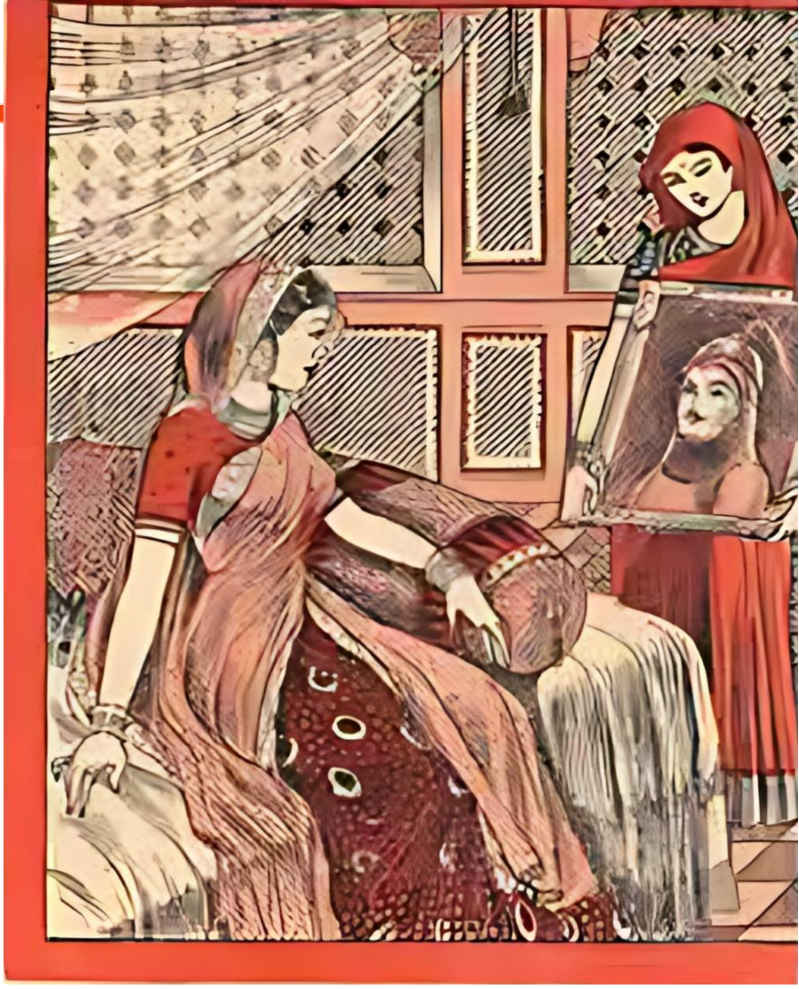
अनङ्गपाल दिल्ली का राजा था। उस की कमलावती और रूपयुन्दरी नामक दो पुत्रियाँ थीं। बड़ी बेटी का विवाह अजमेर राजा के साथ और दूसरी का कन्नौज के राजा के साथ हुआ। विवाह के कुछ ही दिन बाद वे पुत्रवती हुईं। कमलावती के पृथ्वीराज और रूपसुन्दरी के जयचन्द्र पैदा हुए। पृथ्वीराज बड़ा भाग्यशाली था क्योंकि पिता की मृत्यु के बाद अजमेर का राज्य तो उसे मिला ही, साथ ही पुत्र हीन नाना ने दिल्ली का भी उसे दे दिया। इस प्रकार दो बड़े-बड़े राज्यों के अधीश्वर पृथ्वीराज के भाग्य की समता किससे की जाती! जिस प्रकार पृथ्वीराज का सौभाग्य सहज था, उसी प्रकार जयचन्द्र का उसके प्रति विद्वेष भी सहज हो गया। दोनों तो नाती ही थे, फिर दिल्ली का राज्य नाना अनङ्गपाल ने पृथ्वीराज को ही क्यों दो दिया है ? जयचन्द्र के राग-द्वेष का यही मूल कारण था। इसी कारण जयचन्द्र ने पृथ्वीराज के साथ डाह करने की ठान ली। दिल्ली का राज्य उसे न मिला, तो फिर पृथ्वीराज के पास भी न रहे, इसी की सिद्धि में उसे सन्तृप्ति मालम हुई। इसलिए जयचन्द्र ने निश्चय किया कि किसी प्रकार पृथ्वीराज को दिल्ली के राज्य से रहित कर दिया जाय। ऐसा सङ्कल्प करके वह उसकी तैयारी में लग गया।

एक ओर यह सब हो रहा था और दूसरी ओर-

जयचन्द्र की संयोगिता नामक एक सुन्दरी कन्या थी। उसके सौंदर्य की शोहरत देश- देशान्तर में फैल गई थी। कितने ही राजकुमार उसके पाणिग्रहण के लिए उत्कण्ठित हो रहे थे। उन में एक पृथ्वीराज भी था।

फिर भी पृथ्वीराज और दूसरे लोगों में कुछ भेद था। बात यह थी कि पृथ्वीराज ही संयोगिता से विवाह करने को उत्कण्ठित नहीं था, बल्कि संयोगिता ने भी उसे मन-ही- मन वरण कर लिया था।

संयोगिता के बारे में जैसे ही उस के मन में वह सङ्कल्प हुआ, वह अपनी धाय दादी के पास पहुँचा। उसके चरणों पर सिर रख कर उसने नमस्कार किया, फिर अपनी इच्छा उसे बताई और एक चित्र उस के हाथ में रख दिया।



दादी को और क्या चाहिए था? वह खुशी के साथ चल पड़ी। कन्नौज जा पहुँची फिर बड़ी चातुरी से अन्तपुर में दाखिल हुई और संयोगिता को देख कर पृथ्वीराज की तस्वीर उसके हाथ में रख दी।

वह तस्वीर पाकर संयोगिता ने पहले उसे आँखों से लगाया और कहने लगी-"दादी ! तुम्हारे इस उपकार को मैं जन्म जन्मान्तर में नहीं भूलूँगी। 'संयोगिता कभी न-कभी पृथ्वीराज की रानी होगी।' यह आशीर्वाद मुझे दो।"

दादी ने लौट कर यह सब बातें पृथ्वीराज से कही। सुन कर पृथ्वीराज प्रेम-परवश हो गया।

संयोगिता की सम्मति मालूम हो गई थी, लेकिन उसका पिता जयचन्द्र भी इसे मञ्जूर करेगा; पृथ्वीराज को इसका जरा भी विश्वास नहीं था।

जैसा सोचा था, वही हुआ। जयचन्द्र ने अपनी बेटी के व्याह का स्वयम्बर घोषित किया। सब के पास निमन्त्रण भेजा गया, लेकिन पृथ्वीराज के पास नहीं।

इसके अलावा जयचन्द्र ने और एक काम किया। अपने दुर्ग को रखवाली करते हुए पृथ्वीराज की एक मूर्ति बनवा कर सिंहद्वार पर रखवा दी। ऐसा करने में



उसका उद्देश्य यह था कि स्वयम्बर में आने वाले राज-पुत्र इस मूर्ति को देखें जिससे पृथ्वीराज का काफी अपमान हो और इस तरह उसके द्वेष की शान्ति हो।

लेकिन जयचन्द्र की यह आशा पूरी न हुई। हाथ में जयमाला लेकर संयोगिता स्वयम्बर-सभा में आई और उसने दरबार में बैठे हुए राजपुत्रों की ओर सिर्फ एक बार नजर उठाई। उस समय सब लोग अपनी सज-धज को देखने और सँवारने लग गए। सभा के चारों ओर वह जयमालिनी घूम आई, फिर सीधे सिंह-द्वार पर जाकर पृथ्वीराज की प्रतिमा को अपनी जयमाला पहना दी। जयमाला का डालना था कि बिजली की तरह कौन्ध कर पृथ्वीराज वहाँ आ गए और पल-मात्र में संयोगिता को घोड़े पर चढ़ा कर ले उड़े। अब क्या पूछना ! संयोगिता दिल्ली दुर्ग में दाखिल हुई और संयोगिता से 'रानी संयोगिता' बन गई।

अरे ! यह क्या से क्या हो गया ! जयचन्द्र आश्चर्य में डूब गया। फिर वह उग्र हो उठा; लेकिन अब क्या किया जा सकता था ? शेष तो कुछ था नहीं; लेकिन मन की सङ्कीर्णता अब और भी असीम हो उठी। कैसे बदला चुकाया जाय ? इस ताक में वह बैठ गया। उस समय तो जयचन्द्र की आशा पूरी नहीं हुई, लेकिन एक दिन अनायास उसे एक मौका मिल गया। उसी समय महम्मद गोरी ने इस देश पर चढ़ाई कर दी थी। उसने घर के घर जला दिए, गाँव के गाँव उजाड़ दिए, मन्दिरों के शिखर ढहा दिए और जो भी सामने आया, उसे तलवार के घाट उतार दिया।

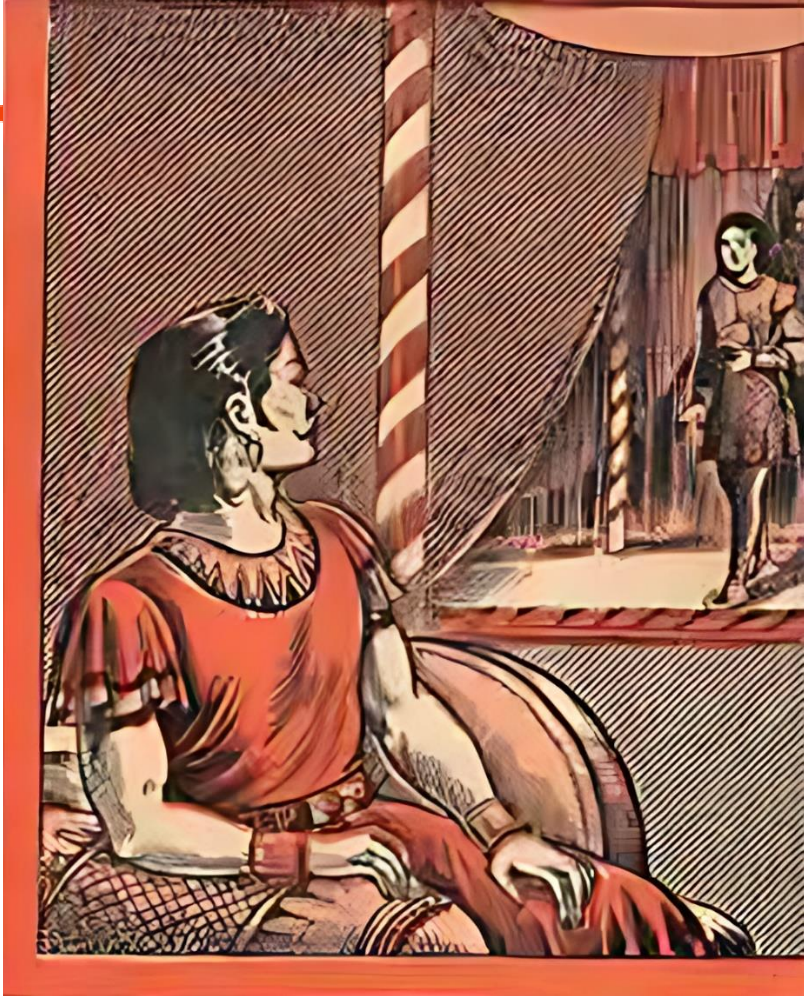
इस तरह भारतमाता का सर्वनाश पृथ्वीराज से देखा न गया। अपने अधीन

समस्त सामन्त-सरदारों को उसने जमा किया और सारी परिस्थिति उनके सामने रख दी। फिर देश-गौरव की रक्षा के दिए शक्ति सामर्थ्य की और सहयोग सहायता की याचना की।

सबों ने सहर्ष उसकी आज्ञा सिर आँखों पर चढ़ाई। सिर्फ एक जयचन्द्र ने उसका साथ न दिया। सामन्तों की सहायता पा जाने से पृथ्वीराज अत्यन्त शक्तिशाली हो उठा। उसके आक्रमण से शत्रु ऐसा विचलित हुआ कि पीछे मुड़ कर देखे बगैर भाग खड़ा हो गया।

युद्ध में हार जाने पर भी गोरी, कमर में लाठी लगे साँप की तरह, बदला चुकाने को तैयार हो गया। गोरी का तैयार होना सहज ही था, लेकिन गोरी की यह तैयारी जयचन्द्र ने अपनी ही तैयारी समझी। जयचन्द्र बड़ी गम्भीरता से सोचने लग गया, कि अब पृथ्वीराज को कैसे चित किया जाय। इसके लिए वह गोरी से भी कहीं अधिक आतुर हो उठा।

इस आतुरता के मारे जयचन्द्र ने मौका देख कर सामन्तों को फोड़ने की कोशिश की और बहुतों को उसने फोड़ भी लिया। अपनी इस सफलता पर उसे अत्यन्त गर्व हुआ। लेकिन उसे फिर भी सन्तोष न हुआ।



"अपने जन्म-जात शत्रु पृथ्वीराज का सिर कैसे कुचला जाय ?" अब वह हमेशा इसी चिन्ता में रहने लगा। इसी चिन्ता में एक दिन जब वह बैठा हुआ था, कि एक सैनिक यहाँ आ पहुँचा।

जयचन्द्र जब एकान्त में था, तब सैनिक-वेश में संयोगिता अपने पिता के पैरों पर गिर पड़ी-"पिताजी, देश का सर्वनाश तो हो ही चुका है। अब तो यह कुचक्र बन्द कीजिए, सङ्कीर्णता दूर कीजिए, कारुण्य लाइए, कुल गौरव की रक्षा कीजिए। दूर दृष्टि से काम लीजिए।" इस प्रकार उसने अनेक तरह से उसे समझाने बुझाने की कोशिश की।

लेकिन परम मूर्ख उस जयचन्द्र के कानों में यह सब कुछ नहीं घुसा। "कुलद्रोहिणी ! तू ही इन सब की जड़ में है। धिक्कार है तुझे। जा हट ! मेरी आँखों से ओझल हो जा।" इस प्रकार संयोगिता को तिरस्कृत करके वह उठा और बाहर चला गया।

अत्यन्त निराश होकर भग्न-हृदय से संयोगिता घर लौट आई।

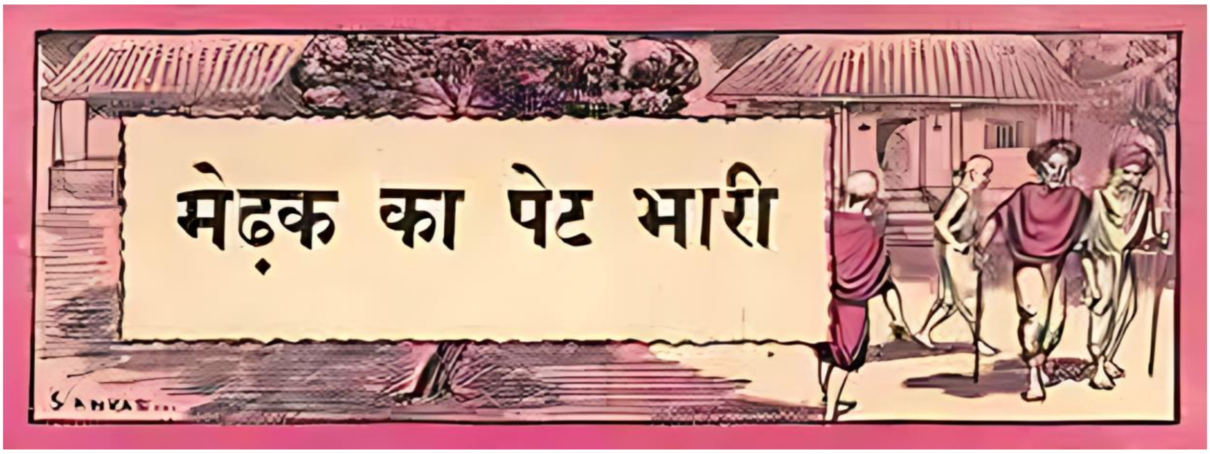
अत्यन्त पराक्रमी पृथ्वीराज ने युद्ध से मुँह नहीं मोड़ा। अब की अधिकांश सामन्त उसके विरोधी हो गए थे, और वह करीब-करीब अकेला हो गया था। इसलिए उसकी सहधर्मिणी संयोगिता भी इस बार अपना कर्तव्य पालन करने के लिए रण-भूमि में आ गई थी।

जो भी हो, पृथ्वीराज के भाग्य में परिवर्तन हो गया था, और उसका पतन प्रत्यक्ष था। अन्त तक अपने शौर्य का प्रदर्शन करते हुए वह सदा के लिए गिर पड़ा। राजा के गिरते ही राज कुल की स्त्रियाँ आरक्षित हो गई।

संयोगिता ने शीघ्र सहगमन की तैयारी कर ली। उसकी सहेलियाँ भी तैयार हो गई। इस प्रकार मुट्ठी भर प्राणों के लोभ में न पड़ कर उन लोगों ने राजस्थान की कीर्ति अमर रखी और अपने अपूर्व त्याग से खुद भी अमर हो गई। राजस्थान के इतिहास में संयोगिता और पृथ्वीराज के नाम स्वर्णाक्षरों में लिखे हुए हैं।

मूर्ख जयचन्द्र की कपट-कला की दीक्षा पूरी हुई। लेकिन उसे इसकी पूरी सजा भी मिल गई। काल सर्प की तरह मोहम्मद गोरी ने अपना काम पूरा होते ही उसकी आँखें भी निकलवा ली। उसका राज्य छीन कर उसका सर्वनाश कर दिया। जयचन्द्र के समान कुचक्री और देशद्रोही को इससे और कम सजा क्या मिल सकती थी !





सिङ्गारपुर गाँव में एक सूरी दादा रहते थे। उनकी एक विचित्र आदत थी।

हर एक बात के पहले वे 'बाजी' लगा कर बोला करते थे। रास्ते चलते कोई सामने आ जाए और पूछ बैठे- "क्या सूरी दादा ! आज तो बादल छाए हुए हैं, जान पड़ता है कि वर्षा जरूर होगी।" तो वे छूटते ही कह उठते-"बाजी....! वर्षा नहीं होगी।" इस तरह बात काट देने की उन्हें आदत पड़ गई थी। हर बात के लिए इस तरह "बाजी- " लगाते रहने के कारण सूरी दादा कभी-कभी खतरे में भी पड़ जाते थे।

एक बार गाँव में शुभाशुभ कार्यों में मन्त्र पढ़ने वाले बड़े पण्डितजी बीमार पड़े। आने-जाने वाले वैद्य लोग अनेक तरह की हलचल मचाए हुए थे। दोस्त-मित्र, बन्धु-बान्धव जमा हो गए थे। पण्डितजी का घर हो-हल्ला से भरा हुआ था। उसी समय संयोग से हमारे सूरी दादा भी उसी रास्ते से निकले। पण्डतजी के घर के सामने यह भीड़ और हल-चल भी उन्होंने देखी, तो किसी से पूछा-"यह केसी हलचल है ?"

"पण्डितजी बहुत बीमार हैं। बड़े-बड़े वैद्य लोग आए हुए हैं, अब कोई घबराने का बात नहीं। जरूर बच जाएँगे।" उस अदमी ने कहा।

फौरन सूरी दादा बोल उठे- "बाजी! पण्डितजी कभी नहीं बचेंगे। चाहो तो दस रुपए की बाजी लगा लो।" कहते हुए उस आदमी का हाथ पकड़ कर रुपए को टन-टन बजाने लग गए। सूरी दादा का हाल वह जानता था। इसलिए उसको उतना ज्यादा गुस्सा नहीं



आया। धीरे से कुछ चिकनी चुपड़ी बातें करके सूरी दादा से उसने अपना पिण्ड छुड़ा लिया। अपनी बुद्धि पर गर्व करते हुए सूरी दादा वहाँ से चले। चार कदम ही गए होंगे कि फिर वही आदमी उनके सामने आ गया और कहने लगा-"सूरी दादा! सुनते हैं कि पण्डितजी के प्राण, अब-तब में हैं। लोग कह रहे हैं कि वे नहीं बचेंगे। आप को कैसा मालूम होता है ?" उसने सूरी दादा से पूछा।

"बाजी!" सूरी दादा ने कहा- "पण्डितजी निश्चय ही बच जाएँगे। चाहो तो दस रुपए की बाजी लगा लो।" कहते हुए उस आदमी का हाथ पकड़ा और रुपए बाहर निकाल लिए।

कुछ दिनों तक सूरी दादा का यही ढङ्ग चलता रहा। हर बात के लिए झट-पट बाजी लगाने वाले सूरी दादा को एक बार एक महा क्रूर आदमी के साथ पाला पड़ा। उस समय सूरी दादा को एक बड़ी बात सूझ गई। वह कौन-सी बात थी, सो सुनो।

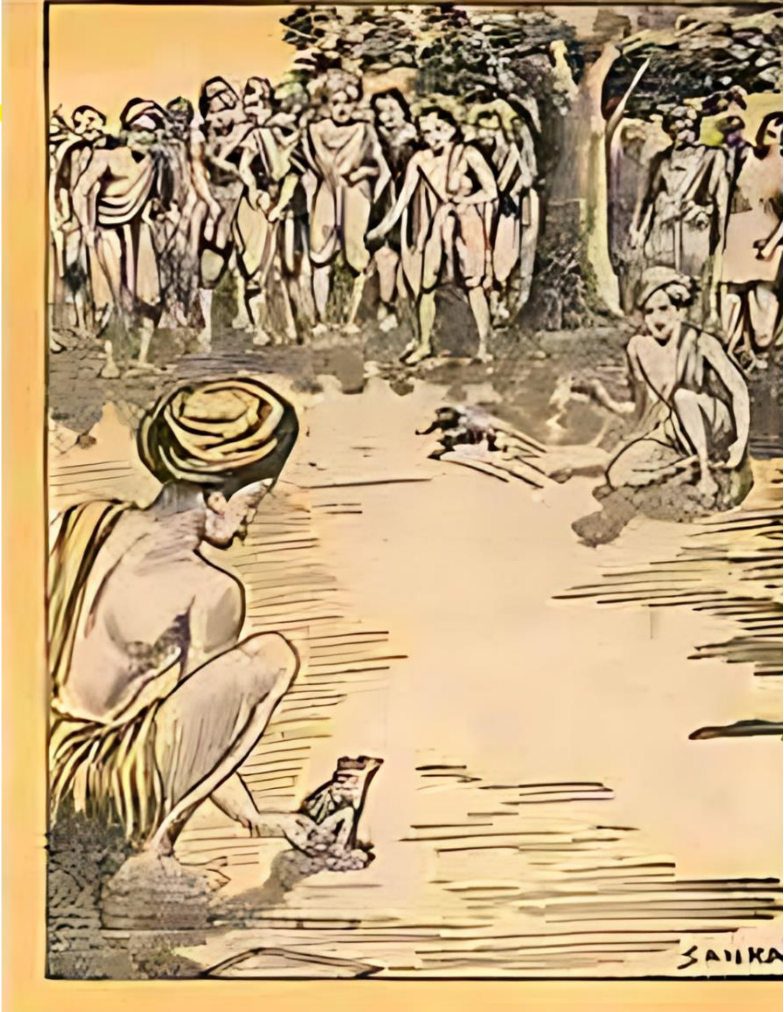
और चीजों की बाजी की तरह मेढ़कों की बाजी भी क्यों न लगाई जाय ? मन में यह ख्याल आते ही सूरी दादा गाँव के बाहर के तालाब पर चले गए और एक बड़े ढास (पीले रङ्ग का बड़ा मेढ़क) को उठा लाए। घर में लाकर उस मेढ़क को एक लकड़ी की पेटी में रखा और बड़े कौशल से उसे उछलना सिखाया। एक गज लम्बी जमीन में दो रेखाएँ खींच कर कुछ फासले पर उस ढाबुस को बिठा देते और कहते-"उछलो, भाई। उछलो !" और उसकी पीठ पर चिटकी मारते जाते थे। इस प्रकार उन्होंने उस ढाबुस को एक उछलन में चार-पाँच गज कूदने का अभ्यास करा दिया था। वहाँ से उस मेढ़क को लकड़ी के पिञ्जड़े में डाल कर गाँव-गाँव घूमने

और "मशहूर मेढ़क ! उछलने में जिस की कोई क्षमता नहीं। अगर किसी के पास इसको हराने वाला कोई मेढ़क हो तो ले आओ भाई। इसके लिए दस रुपए बाजी लगाता हूँ।" कहते हुए चिल्लाते जाते थे। सुनने वाले-"मेढ़क की बाजी कैसी भाई ? न कभी देखी न सुनी।" कह कर हँसने लग जाते थे।

इतने में महा शिवरात्री आई। एक गाँव में बड़ा मेला जमा। "वहाँ पर मुर्गों में बाजी लगेगी, मेंढ़े लड़ेंगे; तो फिर हमारे मेढ़कों की क्यों न बाजी हो ? कोई-न-कोई जरूर निकल आएगा।" यह सोच कर सूरी दादा वहाँ जा पहुँचे।

सूरी दादा उस मेले में घूमते रहे और सब लोगों से अपने मेढ़क का बड़प्पन बधारते फिरे। आखिरकार हमारे सूरी दादा के भाग्य से कहो या अभाग्यसे बाजी लगाने बाला एक आदमी निकल आया और बोला-"अच्छा, बाजी तो बाजी ही- दस रुपए।"

परन्तु उस बाजी लगाने वाले के पास मेढ़क नहीं था। इसलिए सूरी दादा ने उत्साह के साथ इधर-उधर से मेढ़क खोज लाने की उसकी शर्त



मान ली और खुद भी मेढ़क की खोज में निकल पड़े।

बड़ी मुश्किल से हैरान होकर वह एक मेढ़क पकड़ लाए और फिर लकीर खींच कर दोनों मेढ़कों को रख दिया। पहले जिस ने बाजी लगाई थी, उसने अपने मेड़क की पीठ पर उँगली से ठोकर दी और वह एक गज उछल गया ! "अरे इतना ही !.... मेरे मेढ़क को देखो - यह तो एक के बदले चार गज उछल जाएगा।" कहते हुए सूरी दादा ने अपने मेढ़क की पीठ पर उँगली मारी-"उछलो भाई उछलो !" आदत के मुताबिक सूरी दादा

कहने लगे वीर बहादुर बाँका उनका वह मेढ़क उलने के लिए तड़फड़ाया, लेकिन जैसे जमीन से गड़ गया हो- ज्यों-का-त्यों पड़ा रह गया। सूरी दादा को आश्चर्य हुआ और कोध उभर आया।

"अरे भाई, अपनी बहादुरी की लाज तो रख। क्या सूरी दादा का नाम ही डुबो देगा?" कहते हुए फिर से मेढ़क की पीठ पर उँगली मारी। मेढ़क ने अपने सारे शरीर को सिकोड़ा और उछलना चाहा। मगर टस से मस न हो कर ज्यों-का-त्यों पड़ा रह गया। सब लोग सूरी दादा की खिल्ली उड़ाने लग गए। बाजी लगाने वाले ने अपने दस रुपए लिए और वह भीड़ में गायब हो गया। इतने लोगों के बीच सूरी दादा का अपमान हुआ इससे वे गुस्से से जल-भुन गए। उन्होंने अपने मेढ़क की पिछली दोनों टाँगें पकड़ी और उसे उल्टा लटका कर कहने लगे-"तुम नमक हराम ! इतने दिनों तक तुम को इसीलिए पाला-पोसा था? और जिस देश में पैदा हुए, उसका तुमने ऐसा अपमान करबाया?" कहते हुए यह दाँत कटकटाने लगे। लेकिन उसी समय मेढ़क के मुँह से रीठे की तरह गोल-गोल लोहे के छर्रे एक के बाद एक गिरने लगे।

अपने अपमान का कारण सूरी दादा को मालूम हो गया। जब कि वह बाजी लगाने वाले के लिए मेढ़क खोजने गए हुए थे उसी बीच में उस नए आदमी ने इस वीर बहादुर बाँका के पेट में एक-एक कर छर्रे डाल दिए थे। पेट में छर्रे भर जाने के कारण ही वह मेढ़क उस के भार से उछल न सका और सूरी दादा की हार हो गई।

इतने दिनों की कमाई हुई सूरी दादा की सारी कीर्ति आज धूल में मिल गई। उनके मेढ़क की नामवरी भी मिट गई। सच पूछो तो सारे सिङ्गारपुर का नाम ही आज मिट गया।





किसी समय एक गाँव में पीरू नाम का एक दर्जी रहता था। गाँव वालों के कपड़े सीकर अपनी गुजर-बसर किया करता था। एक दिन जब यह नियमानुसार ओसारे पर बैठा कपड़ा सी रहा था-

इतने में वहाँ एक आम बेचने वाला आया। आम को देखते ही दीरू के मुँह में पानी भर आया। उसने आम बेचने वाले को बुलाया और एक दुवन्नी देकर दो आम खरीदे, फिर उन्हें काट कर खाने की तैयारी करने लगा।

इसी बीच में कई मक्खियाँ आकर आम के टुकड़ों पर बैठ गईं। उनको देखते ही पीरू को बेहद गुस्सा आया-"मैंने किस मेहनत से आम को काट कर रखा था। और इन मक्खियों को इसी पर आकर बैठना था ! कैसा इनका साहस है ! अब देखो, मैं इन्हें कैसा मजा चखाता हूँ।" कहते हुए जो कपड़ा वह सी रहा था, उसे गुस्से से उठा कर थप् से उन आम के टुकड़ों पर पटक दिया। चोट खाकर मक्खियाँ जहाँ की तहाँ मर गई। मुश्किल से दो तीन मक्खियाँ ही बच सकी होगी।

"पीरू को तुम लोगों ने क्या समझ रखा था ? शूर-शिरोमणी, वीराग्रणी, मुझसे बड़ा बुद्धिमान और बलवान दूसरा कौन है ?"

फिर उसने गौर से उन मरी हुई मक्खियों को गिना। बराबर एक सौ निकलीं। यह देख कर पीरू घमण्ड से चिल्ला उठा-"एक ही बार में सौ जीवों का मैंने संहार कर दिया। मेरे जैसा वीर लोक में दूसरा और कौन हो सकता है ? कहाँ मैं ऐसा वीर और कहाँ यह दर्जी का काम ! मुझे तो दुनियाँ का उद्धार करने के लिए बहुत बड़े-बड़े काम करने है। असल में मेरे रहने के लायक यह जगह नहीं है।"

अमीर अली

पीरू जो कपड़े सी रहा था, उनको उसने जहाँ का वहाँ छोड़ दिया। फिर उनमें से एक लम्बा सफेद कपड़ा लेकर उस पर बढ़िया रङ्गीन ढोरे से कसीदा काढ़ दिया-"एक बार में सौ जीवों का संहार करने वाला बीर-शिरोमणी पीरू--सौ का एक सरदार।"

उपाधि की यह पट्टी गले में डाल कर पीरू सीधे बाजार चला गया। लोग उसके गले की पट्टी को पढ़ते और हँसते हुए चले जाते। बाजार से पीरू ने एक चिड़िया और कुछ मक्खन खरीदा और वह देश भ्रमण को निकल पड़ा।

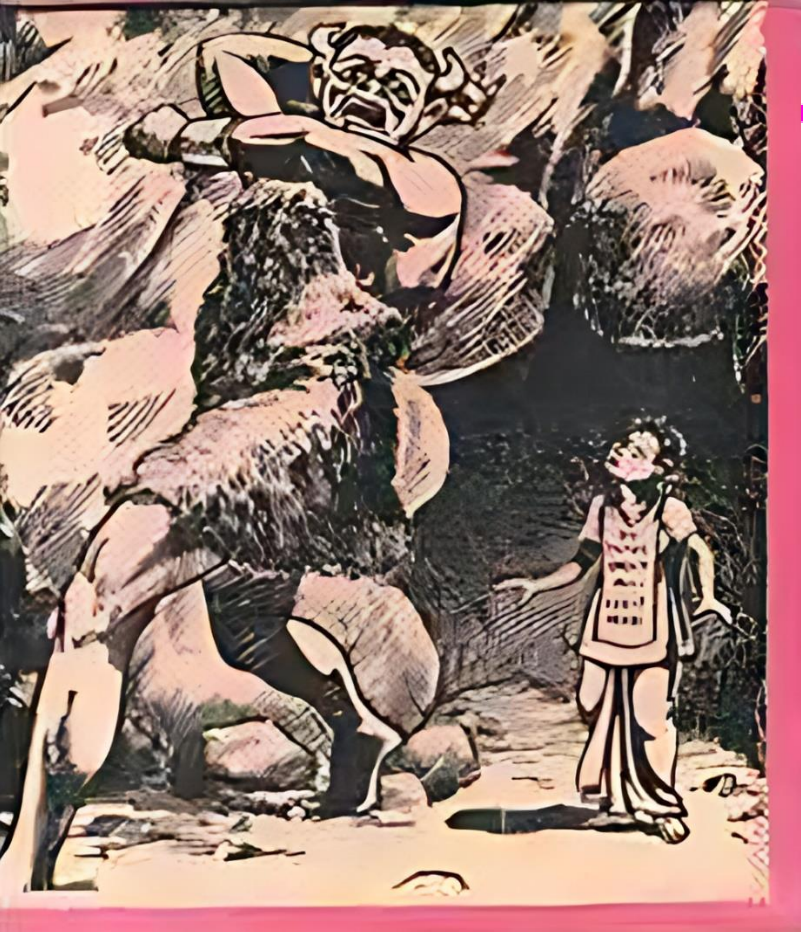
शाम होते होते पीरू एक जङ्गल में पहुँचा। लेकिन उसका कलेजा धुकधुक कर रहा था कि कहीं से कोई बाघ सिंह निकल आया तो वह क्या करेगा? फिर सोचा-"कुछ भी हो। अब फिर से घर का मुँह नहीं देखूँगा।" रात हो आई और वह एक पेड़ के नीचे सो गया। सवेरा हुआ। पीरू निरापद उठ कर बैठा और चिड़िया व मक्खन को लेकर वह आगे बढ़ने लगा।

जाते-जाते पीरू को एक पहाड़ दीख पड़ा। उसमें एक गुफा थी। उस



गुफा में कहीं किसी का नाम निशान भी नहीं था। "अच्छा, यह तो बहुत बढ़िया जगह है, यहाँ कुछ देर थकान दूर कर लें।" यह सोच कर पीरु वहीं लेट गया।

वह गुफा एक राक्षसी की थी। उस समय वह राक्षसी आहार की खोज में कहीं बाहर गई हुई थी। यह बात पीरू को कैसे मालूम होती ? कुछ देर के बाद पीरू को आकाश फटने की सी आवाज सुनाई पड़ी। थर-थर काँपते हुए बाहर आकर उसने देखा। देखते ही उनकी नानी मर गई। एक ब्रह्मराक्षसी लम्बे-लम्बे डग भरती हुई नथुनों को फटकार कर सूबती और गरजती हुई आने



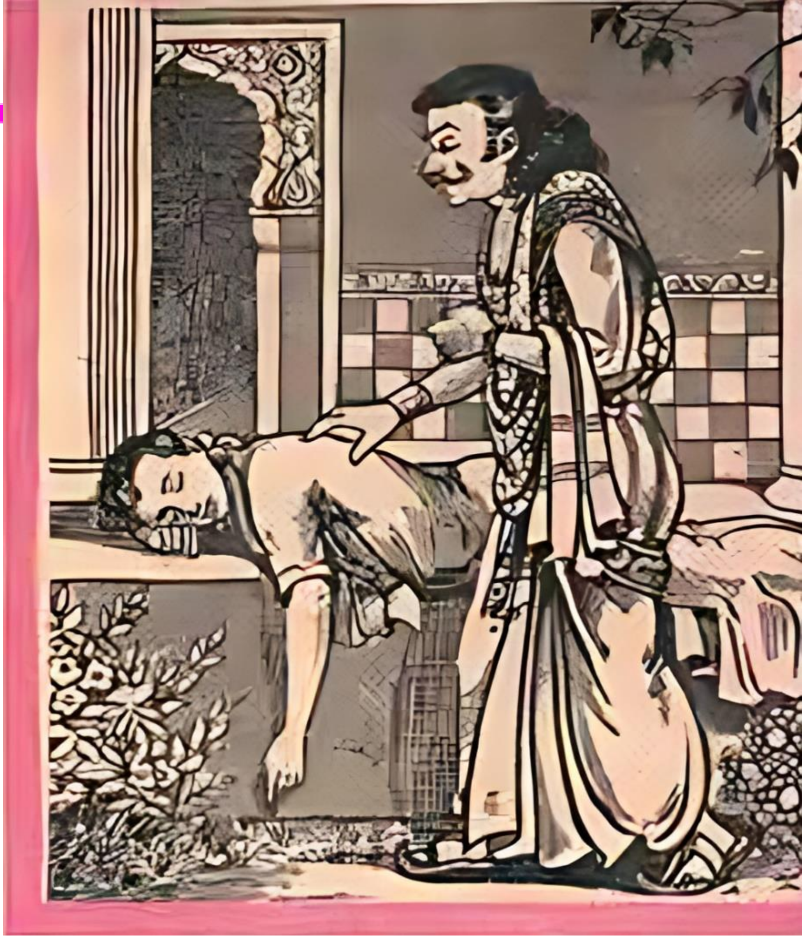
लगी-"आदमी की गन्ध! आदमी की गन्ध! कहाँ ? कहाँ ?" पीरू को कुछ नहीं सूझा। भागने की गुञ्जाइश थी ही नहीं। चाहे जिस तरह हो, किसी उपाय से इस ब्रह्मराक्षसी को जीतना ही चाहिए-- इस का उसने दृढ़ निश्चय कर लिया।

इतने में ब्रह्मरक्षसी वहाँ आ गई और गरज कर बोली-"कौन हो तुम ? मेरी गुफा में प्रवेश करने का साहस तुमने कैसे किया ? देखो! अब में तुम्हारी क्या हालत बनाती हूँ।"

पीरू ने साहस का नाट्य करते हुए कहा-"अरी डायन। मैं कौन हूँ --क्या तू जानती है ? देख, पहले पढ़ तो ले इसे।" कह कर उसने अपने गले की पट्टी उसके सामने कर दी। ब्रह्मराक्षसी ने उसे पढ़ा और वह ठठा कर हँस पड़ी-"बाह ! खूब ! देखने से तो तुम एक छोटी-सी पिद्दी के बराबर भी नहीं मालूम होते; क्या तुमने ही एक बार में सौ जीवों का संहार किया था? अच्छा, तो हम दोनों आपस में अपनी ताकत की आजमाइश कर लें ? तैयार हो जाओ।" इस प्रकार ब्रह्मराक्षसी ने पीरू को ललकारा।

वीर शिरोमणी पीरू ने भी अकड़ कर शान के साथ कहा-" बहुत अच्छा।" फौरन ब्रह्मराक्षसी तालाब में घुसी और दो बड़े-बड़े पत्थर उठा लाई; फिर पीरू के हाथ में देकर बोली-"यह लो। मैं इस पत्थर को ऊपर फेंकती हूँ, तुम उसको फेंको; जिसका पत्थर दूर जाएगा, उसी की जीत मानी जाएगी। अगर तुम जीतोगे तो मैं तुम्हें छोड़ दूँगी। अगर हार गए तो मैं तुम्हें निगल जाऊँगी।"

राक्षसी ने जो पत्थर फेंका, वह सनसनाता हुआ आकाश में चला गया और फिर आधे घण्टे के बाद उनके सामने आ गिरा। यह देख कर पीरू का कलेजा घक् से रह



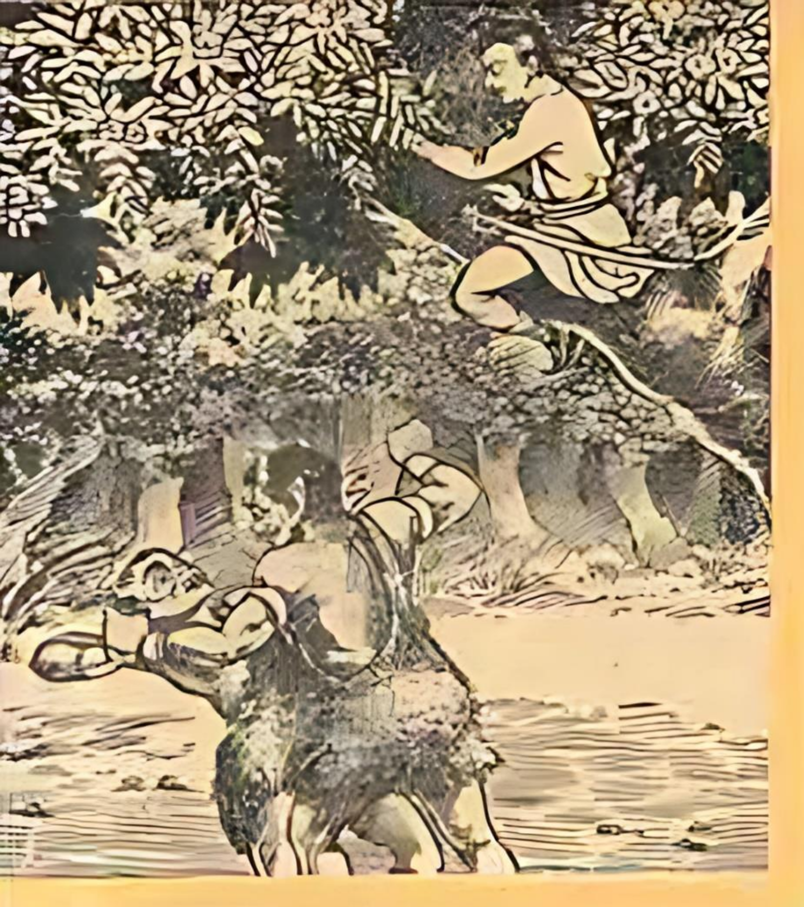
गया। क्या वह इतना काम कर सकेगा? फिर भी धैर्य का नाट्य करते हुए उसने एक उपाय सोचा। राक्षसी की नजरों से बचा कर उसने अपने हाथ का पत्थर पास ही फेंक दिया और जेब में से चिड़िए को निकाला और आकाश की ओर हाथ उठाते हुए बोला-"वह देखो" कह कर उसे आकाश में उड़ा दिया। चिड़िए को मौका मिला। वह फुर्र से उड़ गई और फिर कहीं दीख नहीं पड़ी।

उस भोली भाली राक्षसी ने यह सब चालाकी तो देखी नहीं.... बस, विश्वास कर लिया कि सचमुच उसने पत्थर ही फेंका है। यह सोच कर वह आँखें फाड़े आसमान की ओर देखने लगी कि पत्थर कब गिरता है। पीरू ने भी उस पत्थर की प्रतीक्षा का बहाना किया। वह पत्थर होता तब तो वापस आता! इस तरह दोपहर हो गई, पत्थर का कोई पता न लगा। यह देख कर ब्रह्मराक्षसी कहने लगी-"तुम्हारी शक्ति की जाँच करने के लिए मैं एक और होड़ लगाऊँगी। उसमें जीतना होगा।"

चालाक पीरू ने उसकी बात मान ली। इस बार ब्रह्मराक्षसी दो पत्थर उठा लाई। फिर उन पत्थरों से पानी निकालने की बात ठहरी। राक्षसी ने अपनी सारी ताकत लगा कर पत्थर को मसला, पीसा। उसमें से चार-पाँच बूँद पानी नीचे गिरा।

पीरू को और एक उपाय सूझ गया। आँख बचा कर पत्थर को तो उसने बगल में फेंक दिया और जेब से मक्खन निकाल कर उसे खूब मसला; जिससे झर-झर पानी गिरने लग गया।

इस चालाकी को भी सच समझ कर ब्रह्मराक्षसी पीरू के पैरों पर गिर गई और गुफा छोड़ कर भाग खड़ी हुई। कुछ देर बाद पीरू भी वहाँ से चल पड़ा। जाते-जाते वह एक शहर में पहुँचा और एक



चौपाल पर लेट गया। थका हुआ तो था ही, लेटते ही उसे नींद आ गई।

उस शहर का नाम था 'कल्याण नगर'। वीरसिंह नामक एक राजा उस पर राज्य करता था। पीरू जिस चौपाल पर पड़ा हुआ था, वह उस नगर के मन्त्री का था। किसी काम से मन्त्री बाहर आया और चौपाल पर पड़े हुए पीरू को देख कर उसके गले की पट्टी को पढ़ने लगा।

"ऐसा वीर शिरोमणी हमारे राज्य में आए, यह बड़ा ही शुभ संयोग है।" यह सोच कर मन्त्री फौरन पीरू के पास आया और जगा कर उसे राज दरबार में ले गया। राजा भी ऐसे बीर बहादुर को पाकर बहुत खुश हुआ। राज-दुर्ग ही में उसके रहने आदि का सब सुप्रबन्ध कर दिया गया।

एक दिन राजा ने पीरू के पास एक खबर भेजी-"इस गाँव के बाहर दो राक्षस रहते हैं, वे लोग भारी दुष्ट हैं। दोनों अभी राज्य में हलचल मचाए हुए हैं। उन्हें मार कर विजय प्राप्त करो। सेना जितनी चाहिए, ले जाओ। तुम तो एक बार में सौ जीवों का संहार करने वाले हो। फिर दो को मारना तुम्हारे लिए कौन सी बड़ी बात है?" इस तरह राजा ने उसे प्रोत्साहित किया।

चतुर चालाक पीरू साहस करके तैयार हो गया और बीस सैनिकों को लेकर राक्षसों को मारने के लिए चल पड़ा।

इन बीस सैनिकों को लेकर वह राक्षसों के निवास स्थान से पचास गज की दूरी पर रुका और सनिकों को बिगुल बजते ही पास आ जाने की हिदायत करके, अपनी जेब में छर्रों की कुछ गोलियाँ रख कर वह अकेला ही राक्षसों के पास चला गया।

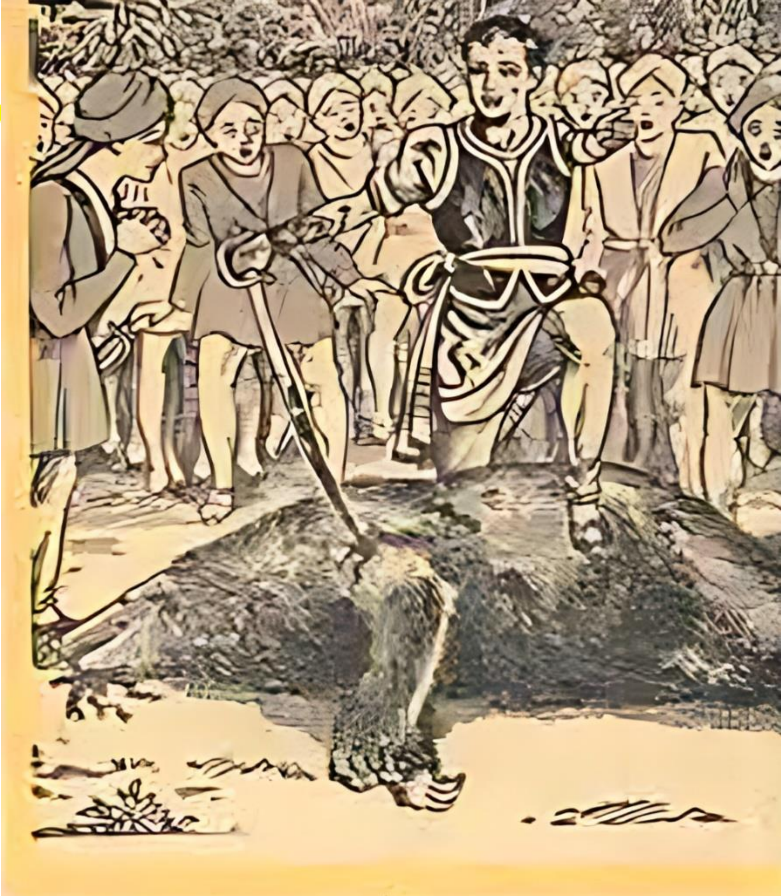
एक पेड़ के नीचे दोनों राक्षस सोए हुए खर्राटे भर रहे थे। पीरू चुप-चाप, किसी प्रकार की आहट किए बगैर, उस पेड़

पर चढ़ गया और मजबूत डालियों के बीच छिप कर बैठ गया। फिर जेब से छर्रे निकाल- निकाल एक एक करके दोनों पर डालने लगा। गोलियाँ लगते लगते कुछ देर के बाद वे दोनों उठे और एक दूसरे में मुक्कम-मुक्की होने लगी। फिर लड़ाई बढ़ी। अब क्या था ? घमासान युद्ध छिड़ गया और देखते देखते दोनों राक्षस वहीं ढेर हो गए।

पीरू को जब यह यकीन हो गया कि दोनों राक्षस निश्चय ही मर गए, तब वह पेड़ पर से उतरा और उसने सीटी बजाई। बीसों सैनिक धपाधप करते उसके सामने आकर खड़े हो गए।

यह खबर बिजली की तरह शहर में फैल गई। भीड़ की भीड़ वहाँ आकर जमा हो गई और सब लोग पीरू की प्रशंसा करने लग गए। इतने में मन्त्री को साथ लेकर राजा भी वहाँ आ पहुँचा और पीरू का अनेक तरह से सम्मान करके उसने उसे अपना आधा राज्य ही दे दिया।

यों कुछ दिन गुजर गए । एक दिन उस राज्य में एक भयङ्कर भालू घुस आया। उसके सामने जो भी पड़ जाता, वह भालू उसके ऊपर टूट पड़ता और उसे जान से मार डालता



था। उसे वश में लाना किसी के बूते की बात नहीं हो रही थी। राजा ने यह देख कर कि अब यह काम किसी से नहीं हो सकता है, वीर शिरोमणी पीरू के पास खबर भेजी- "किसी न किसी तरह इस भालू को मारकर तुम्हें पुण्य सञ्चय करना होगा। अगर तुमने इस भालू को मार डाला, तो सिर्फ बाकी आधा राज्य ही नहीं, में अपनी बेटी भी तुम्हें व्याह दूँगा।" राजा ने यह वचन दिया।

चतुर चालाक पीरू ने सोचा-"यह तो बहुत ही अच्छा है। उसने शाहर के बाहर एक कमरा बनवाया। फिर पहले की तरह बीस सैनिकों को साथ लेकर चला और एक जगह

उन्हें खड़ा करके, बिगुल बजने पर आने की हिदायत कर दी।

खुद एक तलवार और कुछ रस्सी लेकर आगे बढ़ा। कुछ दूर जाने पर झाड़ियों के बीच किसी के आने की आहट हुई। छिप कर उसने देखा; भालू ही था। भालू पीरू को देख कर उछलता हुआ आ रहा था। पीरू डरकर भागा। उसके पीछे भालू भी भागा। पीरू सीधे भाग कर कमरे में घुस गया और खिड़की पर चढ़ कर बैठ गया। भालू भी कमरे में घुसा। आदमी उसे कहीं दीख नहीं पड़ता था, इसलिए घुरघुराता हुआ वह चारों ओर घूमने लगा।

इतने में पीरू ने रस्सी का फन्दा बना कर भालू के ऊपर फेंका। फन्दा उस के गले में जा पड़ा। अब जैसे-जैसे पीरू रस्सी खींचने लगा, वह भालू के गले में कसती गई। कुछ देर के बाद उसकी साँस घुटने लगी और वह छटपटा कर ठण्डा हो गया। भालू दरअसल मर गया, इस का विश्वास हो जाने पर पीरू खिड़की से नीचे कूदा और अपनी तलवार उसके बदन में घुसेड़ दी। फिर शान से सीटी बजाई। फौरन सैनिक-गण वहाँ आ पहुँचे। पीरू जब राजधानी में पहुँचा तो सबने कहा कि इसके समान वीर आज तक कोई पैदा ही नहीं हुआ।

राजा और मन्त्री पीरू के सामने आए और उसे गजेन्द्र पर चढ़ा कर बड़ी धूम-धाम से शहर भर में घुमाया। दूसरे दिन गगन चुम्बी मण्डप बनवाकर राजा ने अपनी बेटी से पीरू की शादी कर दी और अपनी समस्त सम्पत्ति उसे दान कर दी।

अब पीरू राजा का दामाद बन गया और 'कल्याण नगर का राजा' कहलाने लगा।

देख लिया न बच्चो ! कपड़े सीने वाला एक मामूली दर्जी अपनी चालाकी से कैसे राजा हो गया। इसी लिए बड़े बूढ़ों ने कहा है कि दौहिक बल से बुद्धि-बल कहीं श्रेष्ठ होता है। तुम भी इसे सच कहोगे न ?





यशस्कर जब काश्मीर पर राज्य कर रहा था, तो बातों की मोहनी में मेहनत से कमाए हुए अपने समस्त धन को खो देने वाले की कहानी, हम पढ़ ही चुके हैं।

फिर एक बार--

एक दिन न्याय विभाग से सम्बन्ध रखने वाले कर्मचारियों ने आकर राजा से कहा-"महाराज! एक ब्राह्मण हमारी कचहरी में अकर मरण उपवास कर रहा है।"

फौरन राजा ने उस ब्राह्मण को बुलवाया और पूछा-"आप की क्या शिकायत है भूदेव ?" राजा के उस प्रश्न का ब्राह्मण ने यों जवाब दिया-"कश्मीर देश की राजधानी श्रीनगर के श्रीमानों में मैं एक हूँ। लेकिन अब जमाना पलट गया है। मेरी हालत भी बदल गई है। धन-सम्पत्ति नष्ट हो गई, कर्जों ने घेर लिया, घर-बार, बाग-बगीचा सब कुछ बेच कर किसी तरह जीवन-यापन करने के लिए कहीं चला जाऊँ; ऐसा मैंने निश्चय किया।

उसी गाँव के एक व्यापारी ने मेरी सारी सम्पत्ति खरीद ली। लेकिन बगीचे में एक बावड़ी थी जिसे न बेच कर मैंने अपनी स्त्री के लिए रख छोड़ा था। गर्मी के मौसम में बाग के माली गण उस बावड़ी से ही पानी खींच कर पेड़ पौधों में डाला करते थे। इस प्रकार बावड़ी का पानी इस्तेमाल करने के कारण, हर साल वे लोग कर के रूप में कुछ-न-कुछ दिया करते थे। यों जो आमदनी होगी उसी से मेरी स्त्री की गुजर-बसर हो जाएगी; इसी उद्देश्य से मैने उस बावड़ी को रख लिया था। पत्नी की जीविका का इस तरह इन्तजाम करके कुछ सन्तोष से आगे-

सतीश चन्द्र मेहता



पीछे की भीषण चिन्ताओं से कुछ मुक्त होकर, मैं परदेश चला गया।

बीस बरस के बाद, कुछ कमा कर फिर अपने देश में पहुँचा। आकर देखता क्या हूँ कि मेरी स्त्री किसी के घर में काम करके अपना पेट पालन कर रही है।

यह बात मालूम होते ही मुझे गुस्सा आ गया और मैं अत्यन्त दुःखित हो गया। फौरन मैंने अपनी पत्नी को बुलाया और पूछा-'मैं तुम्हारे खाने-पीने का इन्तजाम तो कर ही गया था, फिर तुम्हारी यह हालत क्यों हुई ?' इस पर वह अपने नख नोचती हुई कहने लगी-'तुम्हारे परदेश जाने के बाद मैं उस बावड़ी के पास गई। जैसे ही बावड़ी पर पहुँची थी कि हमारे घर खरीदने वाले ने मुझे बहुत खरी-खोटी सुनाई, मारा-पीटा और गर्दनिया देकर वहाँ से निकाल दिया। मैं अबला थी; क्या करती ? फौरन न्यायाधीश के पास जाकर मैंने मरण उश्वास करके फरियाद की--उस दुष्ट व्यापारी ने मेरी बावड़ी पर अन्याय से अधिकार कर लिया है।" यह सब सुन कर वहाँ के हाकिमों ने व्यापारी के पक्ष में ही फैसला दिया। इसी से उस बावड़ी पर से मेरा अधिकार छिन गया।'

तब से न जाने कितने बड़े-बड़े लोगों के पास जाकर मैं अपनी राम कहानी सुनाता आ रहा हूँ। लेकिन सब-के-सब उस व्यापारी का ही पक्ष लेते आए हैं।" इस प्रकार उसने सारी कहानी कह सुनाई।

सब कुछ सुना कर उसने फिर कहा-"महाराज, मैं बहुत भोला-भाला आदमी हूँ, इस तरह के मामले मुकदमों से बिलकुल अनजान हूँ। में एक ही बात कहता आया हूँ, कि सिर्फ घर-आँगन ही मैने उस व्यापारी को बेचा था- वह बावड़ी मैंने नहीं बेची थी। यह बात मैं शपथ

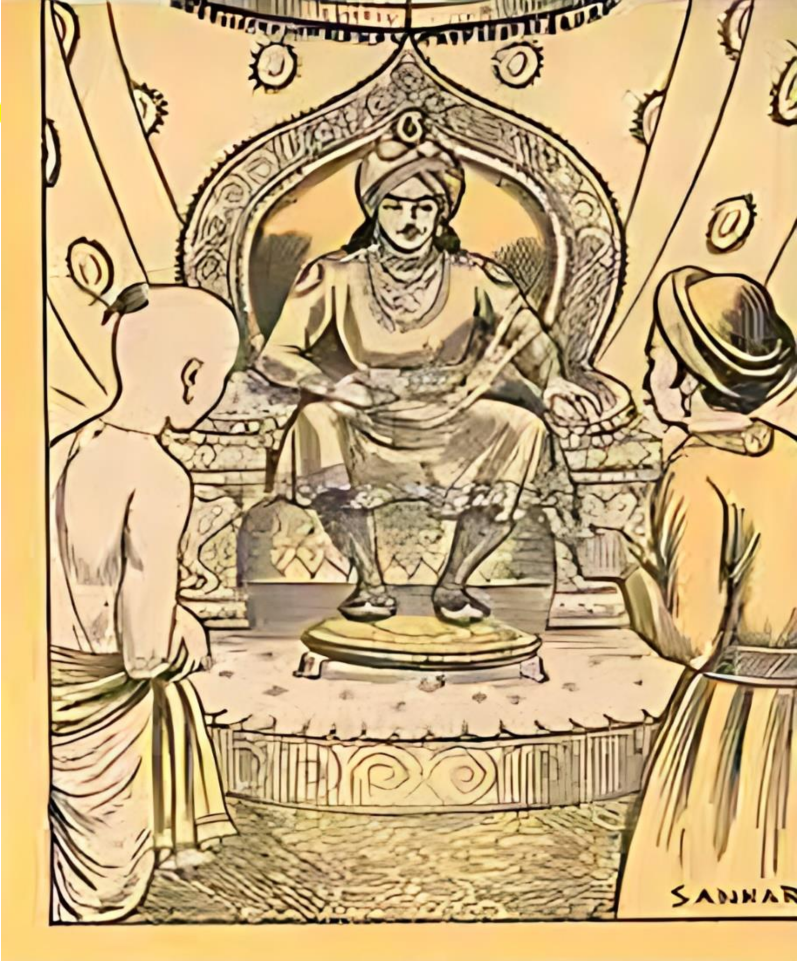
खाकर कहता हूँ।" अब अगर मेरे साथ सच्चा इन्साफ न किया गया तो फाकाकशी करके राज दरबार में मरने के सिवा दूसरा चारा नहीं।"

दूसरे दिन यशस्कर महारज इन्साफ करने आ विराजे। राजाज्ञा से वादी प्रतिवादी, साक्षी, और वे हाकिम जिन्होंने पहले फैसला किया था; सब लोग दरबार में हाजिर हुए।

"इन्साफ कैसे हुआ था?" राजा ने सवाल किया। इस पर न्यायाधीश ने कहा-"महाराज, हम लोगों ने हर बार न्याय-पूर्वक ही फैसला किया है। लेकिन इस दुष्ट बुद्धि ब्राह्मण ने हमारे फैसले को कभी माना ही नहीं। यह तो दस्तावेज को ही झूठा कहता है।"

यह सुन कर राजाने दस्तावेज उठा कर देखा। उस में लिखा था-"बावड़ी के साथ घर-बार बेचा गया।"

राजा ने सोचना शुरू किया। साथ ही साथ सभा में बैठे हुए लोगों से इधर-उधर की कुछ बातें भी चला दीं। बात-बात में रत्नों की बात भी चली। राजा ने वहाँ के लोगों की अंगूठियाँ लेकर उनके नगीनों को कुतूहल से देखना शुरू कर दिया।



इस प्रकार शौक से बात करते हुए हँसते- हँसते जैसे उसने दूसरों के हाथों से लेकर अंगूठियाँ देखी थीं, वैसे ही उस प्रतिवादी व्यापारी के हाथ से भी अंगूठी ले ली।

फिर बाहर आकर यशस्कर महाराज ने वह अंगूठी एक राजदूत के हाथ में देकर कहा-"तुम यह अंगूठी लेकर उस व्यापारी के घर जाओ और उसके मुनीम को दिखा कर उससे कहो कि अमुक साल की जमा खर्च वही चाहिए।" ऐसा कह कर राजा ने दूत को भेज दिया। उस जमाने में इस प्रकार विश्वास उत्पन्न करने वाली निशानी को ही 'अभिज्ञान' कहा जाता था।

राजा का द्रुत व्यापारी के घर गया और मुनीम को 'अभिज्ञान' देकर वह जमा-खर्च बही माँगी। किसी प्रकार के शक की गुञ्जाइश तो थी नहीं, उसने अंगूठी अपने पास रख ली और जमा-खर्च बही उसे दे दी।

जमा-खर्च बही के आते ही राजा ने उसे बड़े गौर से देखा, हिसाब के बीच में एक जगह दर्ज था-"उस दस्तावेज लिखने वाले मुहर्रिर को एक हजार रुपए दिए गए।" यह उसे दीख पड़ा।

दस्तावेज लिखने वाले मुहर्रिर को इतना रुपया क्यों दिया गया ? राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। व्यापारी ने ऐसा क्यों किया ? इसका कारण क्या हो सकता है ? इस पर उसने गम्भीरता से सोचना शुरू किया। आखिर वह रहस्य उसकी समझ में आ गया। तुरन्त राजा ने दरबार में आकर वह वही सबों को दिखाई। फिर दस्तावेज लिखने वाले मुहर्रिर को बुलाबाया गया।

"महाराज ! अपराध क्षमा हो। मैंने व्यापारी के पास से एक हजार रुपया लिया था, यह बात बिलकुल सच है। रुपया लेकर मैने जहाँ 'रहित' लिखा था उसे मिटा कर 'सहित' कर दिया। यह बात भी सोलह आने सच है। हुजूर दयालु हैं।" कह कर वह राजा के पैरों पर गिर पड़ा।

व्यापारी की जालसाजी साबित हो गई। उसके पहले जिन हाकिमों ने फैसला दिया था, उनके मुँह फीके पड़ गए। व्यापारी ने जो कुछ ब्राह्मण से खरीदा था, वह सब उस को लौटा दिया। फिर राजा ने उस जालसाज व्यापारी को अपने राज्य से निकाल दिया।





ब्रह्मदत्त जब काशी नगरी का राजा था, उस समय उस गाँव में एक ब्राह्मण रहता था। 'वेदर्भ' नामक महामन्त्र में उसने सिद्धि प्राप्त की थी। ग्रह-नक्षत्रों के एकत्र होने के समय आकाश की ओर देखते हुए इस मन्त्र का पुनश्चरण किया जाय तो सीधे आसमान से सोने, चाँदी, मोती, मूँगा, रत्न, लालमणि और नीलमणि यह सातों चीजों बरसने लग जाएँगी।

मन्त्र-सिद्ध इस ब्राह्मण के पास आकर भगवान बोधिसत्व उसके शिष्य हो गए। एक दिन शिष्य को साथ लेकर गुरु जङ्गल की ओर चल पड़े। उस जङ्गल में पाँच सौ क्रूर लुटेरे रहते थे। उन लोगों ने गुरु और शिष्य दोनों को रोक लिया। लेकिन उन लुटेरों में एक विचित्र नियम का पालन होता आया था।

दो राही मिल कर अगर उस रास्ते पर आएँ और पकड़े जाएँ तो एक को घर जाकर जुर्माने की रकम ले आने और अपने साथी को छुड़ा ले जाने का मौका मिल सकता था। इस प्रकार एक को छोड़ दिया जा सकता था।

उन राहगीरों में अगर बाप-बेटे हों, तो जुर्माने की रकम लाने के लिए बाप को भेजा जा सकता था। इस तरह बेटे को रिहाई पाने का मौका दिया जा सकता था। इसी तरह माँ-बेटी हो, तो माँ को, सहोदर बहनें हों, तो एक को, गुरु शिष्य हों, तो शिष्य को छोड़ देने का नियम-सा हो गया था।

इन लुटेरों ने ब्राह्मण को अपने पास रख कर शिष्य बोधिसत्व को रकम लाने को छोड़ दिया। जाने के समय बोधिसत्व ने गुरु को प्रणाम किया- "गुरुवर, डरने की कोई बात नहीं; एक दो दिन में लौट ही आऊँगा।

कैलाश नाथ 'कुसुम'



समय आ पहुँचा। चोरों के हाथ में पड़ कर लाचारी की यह हिंसा में क्यों भोगू ? हाथ में मन्त्र है, उसका जाप कर क्यों न बारिश बुला लूँ और लुटेरों को उनकी रकम देकर रिहाई पा लूँ ? यों आजाद होकर सुख से रहने का मौका क्यों गवाँ दूँ?"

यह सोच कर ब्राह्मण ने लुटेरों को अपने पास बुलाया-"भाइयो, बताओ तुमने मुझे क्यों बाँध रखा है ?" उसने पूछा। "पैसे के लिए और क्यों ?" उन लोगों ने जवाब दिया।

लेकिन मेरी एक विनती मानिए: आज ग्रह नक्षत्रों के जमा होने का योग है। भूल कर भी आज मन्त्र न जपिएगा और न रत्नों की वर्षा ही बुलाइएगा। अगर ऐसा किया, तो ये लुटेरे भी भारी विपति में पड़ जाएँगे।" इस प्रकार अनेक तरह से समझा-बुझा कर बोधिसत्व चले गए।

सूरज डूब गया था। लुटेरों ने आकर ब्राह्मण को पकड़ लिया। तरबूज के फूल की तरह पूर्णिमा का चाँद अपनी ज्योत्सनाओं को फुहारे की तरह आकाश में छोड़ रहा था। ब्राह्मण ने आकाश की ओर देखा, और सोचा-"ग्रहों के एकत्र होने का

"इतना ही न ? अच्छा, तो जो मैं कहता हूँ करो, फिर तुम जितना धन माँगोगे, दे दूँगा।" उसने कहा-

"पहले मुझे खोल दो, फिर मुझे अच्छी तरह नहलाओ, नए कपड़े पहनाओ, फूल तोड़ कर ले आओ और यहाँ जमा कर दो। मेरे चारों ओर धूप-दीप जला दो, सुगन्ध पदार्थ रख दो; उसके बाद फिर क्या होता है-आँखें खोलकर देख लो।"

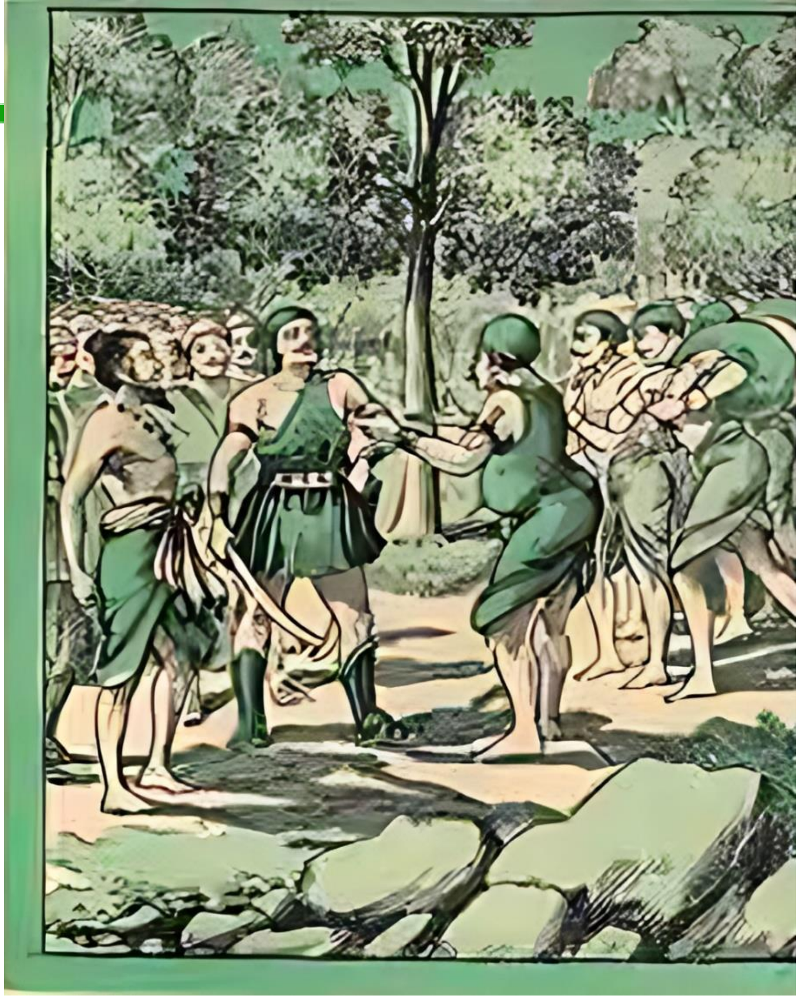
ब्राह्मण ने जैसा कहा, लुटेरों ने ठीक वैसा ही किया। उसके बाद पोथी पत्रा देख कर उसने आकाश की ओर दृष्टि स्थिर की और मन्त्र

का जाप करने लग गया। तुरत मणि-माणिक की वर्षा होने लगी। लुटेरों ने झट-पट उन्हें बटोरा और गठरियों में बाँध कर अपनी राह ली। उनके पीछे-पीछे ब्राह्मण भी जाने लगा।

इतने में बीच रास्ते पर फिर एक लुटेरों का दल आ धमका और पहले दल को ललकारा। "क्यों भाइयो, तुम हम पर क्यों टूटे पड़ते हो?" पहले दल वालों ने पूछा। दूसरे दल वालों ने जबाब दिया-"धन के लिए और क्यों ?"

"इतना ही न ! धन चाहिए, तो इस ब्राह्मण को पकड़ो। इसके आसमान की ओर देखते ही, बस ! रत्नों की वर्षा होने लगती है। इसी प्रकार इसने हमें इतना धन दे दिया है।" यह कह कर वे लोग छूट गए और अपनी राह चले गए।

अब दूसरे दल वालों ने ब्राह्मण को पकड़ लिया-"हमारे लिए भी धन बरसाओ ब्राह्मण देवता।" इस प्रकार कह कर वे उसे सताने लग गए। यह देख कर ब्राह्मण बोला-"भाइयो, उन लुटेरों को मन्त्र की महिमा से मैंने धन दिया था। लेकिन मैंने जो मन्त्र सीखा है, उसका प्रयोग फिर एक



साल के बाद ही हो सकता है। मैं जब चाहूँ यह फल नहीं दे सकता। इसके लिए ग्रहों को एकत्र होना पड़ता है; इस में बड़ी कठिनाई है। एक साल के बाद जब सब ग्रह एकत्र होंगे, उस समय मैं तुम्हारे लिए सोने की वर्षा करा दूँगा।"

ब्राह्मण की बातों पर लुटेरों ने विश्वास नहीं किया" हमसे पहले आने वालों को तुमने कुबेर बनाकर भेज दिया और हमारे लिए एक साल ठहरने को कहते हो। झूठे कहीं के!" कहते हुए तेज-तलवार से उसके दो टुकड़े कर दिए और धड़ को बीच रास्ते में टाँग दिया।



यह सब करके फिर वे तेजी से दौड़े और पहले दल वाले लुटेरों को जा पकड़ा और उन लोगों को मार कर सारा धन छीन लिया। फिर लूटे हुए धन के बँटवारे पर दोनों दल वालों में घमासान लड़ाई होने लगी। दोनो दल वाले वीर बहादुर थे और मरने-मारने का पेशा ही करते आए थे। फिर यह आन-मान का सवाल था।

इस लड़ाई में करीब-करीब एक हजार लोग मारे गए। आखिर सिर्फ दो रह गए ! दोनों ने उस सब धन को पास के एक जङ्गल में गाड़ दिया। फिर उनमें से एक तलवार लेकर उस जगह पर पहरा देने लगा और दूसरा खाने-पीने की सामग्री लाने पास के गाँव में चला गया।

जो आदमी धन के ऊपर पहरा दे रहा था, उसने सोचा-"अगर मेरा साथी आ गया तो इस धन में से आधा हिस्सा ले ही लेगा.... अब कैसे क्या किया जाय ?" इस चिन्ता में वह डूब गया।

और जो खाने-पीने की सामग्री लाने गया था वह यो सोचता जा रहा था- "अगर उसे मार डाला जाए तो यह सब धन मेरा ही हो जाएगा और मैं धन कुबेर बन जाऊँगा।" ऐसा सोच कर उसने अपने लिए कुछ अलग रख लिया, बाकी और चीज़ों में जहर मिला दिया।

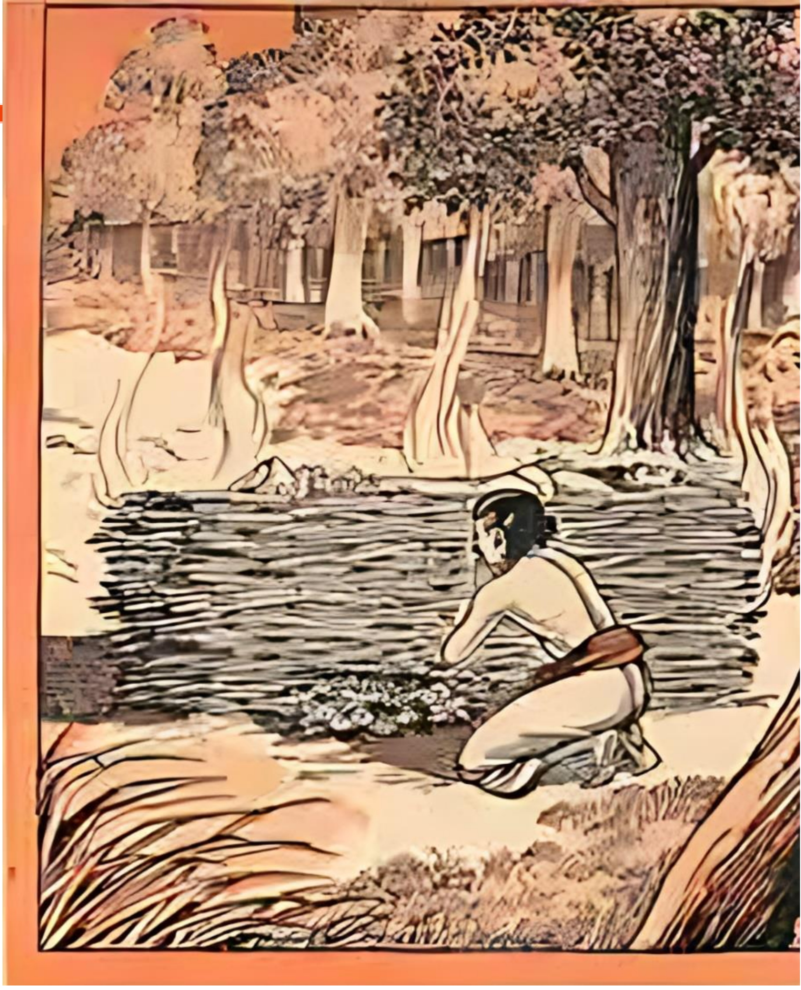
हाथ में खाने-पीने की सामग्री लिए जैसे ही वह डेरे पर अपने साथी के पास पहुँचा कि दूसरा चोर उछल पड़ा और उसने अपनी तलवार से उसके शरीर के दो टुकड़े कर दिए। फिर मजे से खाना पकाया और जो खाकर लेटा तो लेटा ही रह गया।

इस प्रकार ब्राह्मण और उसके साथ सभी चोर, लोभ के शिकार होकर, मिट्टी में मिल गए। एक-दो दिन में भगवान बोधिसत्व जुर्माने की रकम लेकर चोरों की जगह पर जा

पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने अपने गुरु की खोज की। लेकिन गुरु-देवता कहीं नजर नहीं आए। जहाँ देखा वहाँ धन ही धन दीख पड़ा, जिधर दृष्टि उठती थी, वहाँ शरीर ही शरीर नजर आते थे। उस समय बोधिसत्व ने सोचा-"मालूम होता है कि इस ब्राह्मण ने मेरी बात अनसुनी कर दी। लोभ में पड़ कर परसों इस ब्राह्मण ने जरूर मन्त्र का जाप किया होगा और रत्न भी बरसाए होंगे। उसी के फल-स्वरूप सब लोग मर कर ढेर हो गए हैं।" इस प्रकार सोचते और देखते-सुनते वे राह चलने लगे।

कुछ दूर पर गुरुदेव का शरीर दीख बड़ा। "हाय! मेरे गुरु देव। आप ने मेरी बात नहीं मानी और अपनी यह दुर्गति करवा ली।" ऐसा कह कर वे लकड़ियाँ जमा करने लगे। यों उन्होंने गुरुदेव की दाह क्रिया पूरी की। फिर जङ्गल से फूल तोड़ कर लाए और समाधी पर चढ़ा कर गुरुदेव को आखिरी नमस्कार किया।

वहाँ से आगे जाते-जाते उन्हें पहले दलवाले पाँच सौ चोर मरे हुए दीख पड़े। फिर कुछ दूर जाने पर दूसरे दल वालों के घायल शरीर इधर-



उधर पड़े नजर आए। दो छोड़ कर बोधिसत्व ने जिन्हें देखा था, सब के सब धराशायी दीख पड़े। वह सोचने लगे-"फिर ये दोनों कहाँ भाग गए ?" जिस रास्ते वे लोग गए थे, उनकी टोह लेते, बोधिसत्व एक घोर जङ्गल में पहुँच गए। उस जङ्गल में धन के ढेर दीख पड़े और जिनको भागा हुआ समझ रहे थे, उनमें से एक का शरीर वहाँ दीख पड़ा।

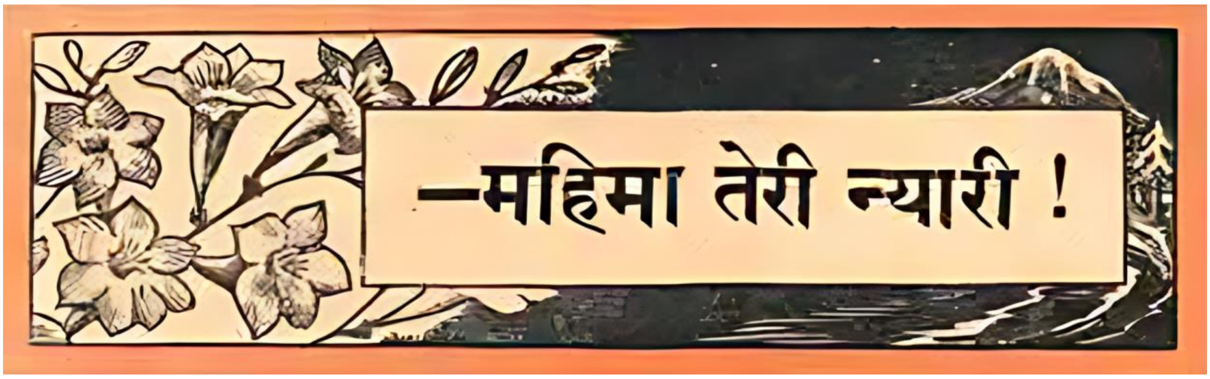
लेकिन उसके पास ही खाने-पीने की चीजों से भरे हुए पात्र पड़े हुए थे-"ओहो। ऐसी बात है?" बोधिसत्व ने सोचा। दो चार कदम जाने के बाद एक कोने में

वह दूसरा चोर भी निर्जीव पड़ा हुआ था। अब बिना किसी के कहे सुने ही सभी बातें बोधिसत्व के ध्यान में चढ़ गई। यह सब देख करके बोधिसत्व को बहुत दुख हुआ-"गुरुदेव ने मेरी बात नहीं सुनी। कितना समझा कर गया, फिर भी वे बहरे बन गए। अपनी बुद्धि पर भरोसा रखा। उसी का यह फल मिला; खुद तो नष्ट हुए ही और अपने साथ एक हजार आदमियों को भी लेते गए। दूसरों की बात न सुन कर अपने मन में जो आया, उसी को ठीक समझ कर मनमानी करने वाले को ऐसी ही सजा मिलती है।

मेरे गुरुदेव ने अपने मन्त्र की महिमा से आसमान से भू-लोक में जो धन उतारा था, उससे मानव प्राणी को कोई लाभ नहीं हुआ; उल्टा उससे संघर्ष, मरण और विनाश का रास्ता खुल गया। जब बुद्धि टेढ़ी राह पर चलने लगती है, तब अच्छी चीज भी बुरी बन जाती है। वह दोष वस्तु में नहीं होता, मनुष्य की बुद्धि में होता है। टेढ़ी बुद्धि आग की ज्वाला की तरह होती है। बह एक दो का नाश करके ही नहीं जाती, जाने कितनों का नाश करके ही तब वह आग ठण्डी होती है।" बोधिसत्व ने कोने-कोने में जा कर डङ्के की चोट यों उपदेश दिया। अपने गुरु का उदाहरण देकर सब को खूब समझाया बुझाया। जङ्गल, पहाड़, मैदान सब जगह बोधिसत्व का जय-जयकार मचने लगा।

उसके बाद उस समस्त धन-सम्पदा को बोधिसत्व अपने आश्रम में उठा ले गए और परोपकार के कार्य में उसका उपयोग करने लगे। इसके बाद उन्होंने अवतार लेना छोड़ दिया।





एक आदमी ने एक बार रेल-यात्रा करने की तैयारी की। उसके साथ एक बूढ़ी भी थी। उस आदमी की जेब में टिकट लेने के अतिरिक्त अधिक पैसे नहीं थे। इसलिए उसने अपने लिए तीसरे दर्जे का एक टिकट ले लिया और टिकट बाबू की नजर से बचने के लिए बुढ़िया को उसने बिस्तर में लपेट लिया। फिर बड़ी शान के साथ वह लेटफार्म पर पहुँचा। बिस्तर को सिर पर उठाए हुए वह एक तीसरे दर्जे में घुसा। बिस्तर को ऊपर वाली खाली सीट पर रख दिया और खुद सुख की साँस छोड़ता हुआ नीचे की सीट पर बैठ गया।

कुछ समय के बाद और भी मुसाफिर आने लगे। दो मुसाफिर उसी डिब्बे में घुसे । एक के पास टीन का एक और दूसरे के पास दो बड़े-बड़े बक्सें थे। पहले यात्री ने अपना बक्सा बुढ़िया वाले बिस्तर पर रख दिया। बुढ़िया बिस्तर के अन्दर थी; इसलिए चुप-चाप पड़ी रही। दूसरे ने भी अपने दोनों बक्सें को उसी बक्स पर रख दिया। फिर आकर अपनी सीट पर बैठ गया और इतमीनान से इधर-उधर देखने लगा।

बिस्तर वाला मुसाफिर अपनी करनी पर पछता रहा था। बेचारी बुढ़िया पहले से ही मुसिबत में पड़ी थी, अब यह तिगुना कष्ट न सह सकी। कष्ट की मारी वह बुढ़िया जैसे ही बिस्तर के अन्दर सगबगाई कि तीनों बक्से नीचे आ गिरे। एक बक्स बिस्तर वाले की ही टाँग पर गिरा। वह गुस्से से लाल-पीला हो उठा और आव न देखा न ताब उस बक्स को उठा कर बाहर फेंक दिया। जिस आदमी का वह बक्स था वह यह देख रहा था।

नीता नैयर

वह गुस्से में आ गया और उसने दूसरे आदमी का बक्स उठा कर बाहर फेंक दिया। दूसरे आदमी ने जब देखा कि उसका बक्स बाहर फेंक दिया गया है, तो उसने बुढ़िया के मालिक का वह बिस्तर ही उठा कर बाहर फेंक दिया जिसमें यह बदनसीब बुढ़िया बँधी हुई थी।

इसी झगड़े में रेल चली गई। और वह बक्स व विस्तर वगैरह सब प्लेटफार्म पर ही पड़े रह गए। बिस्तर में बँधे होने के कारण बुढ़िया को चोट नहीं लगी और वह सकुशल से बाहर निकल आई। उसने पड़े हुए बक्सों को उठा कर अपने पास जमा कर लिया और उनको वह बड़े इतमीनान के साथ खोल कर देखने लगी।

बुढ़िया ने जैसे ही पहला बक्स खोला कि उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। उस बक्स में रेशमी कपड़े और गहनों का एक छोटा-सा बक्स निकला। देखते ही बुढ़िया की आँखें नाच उठीं।

जल्दी से उसने दूसरा बक्स खोला। उसमें कुछ उनी और कुछ दूसरे कपड़े थे। उसी बक्स के एक खाने में एक बटुआ भी उसे दीख पड़ा। जब बुढ़िया ने बटुआ खोला तो उसमें पाँच हजार के नोट निकले। बुढ़िया ने अपने भाग्य की सराहना की और जल्दी-जल्दी गिन कर रुपए हिफाजत से अपने पास रख लिए। फिर भगवान को अनेक अनेक धन्यवाद देने लगी।

बच्चों ! तुमने देखा कि भगवान जब किसी पर दया करना चाहते हैं तो अनेक प्रकार के रास्ते खोल देते हैं। जैसे उस बुढ़िया की मुसीबत को दूर करने के लिए उसको एक विचित्र यात्री के साथ कर दिया। सच है भगवान की लीला न्यारी होती है जब वे देना चाहते हैं तो छप्पर फाड़ कर देते हैं।



CHANDAMAMA (Hindi) JANUARY 1954 Regd. No. M. 8452



रङ्गीन चित्र कथा, चित्र–५